

नारी उत्थान समय की सबसे बड़ी आवश्यकता



— भगवती देवी शर्मा

नारी उत्थान : समय की सबसे बड़ी आवश्यकता



लेखिका
भगवती देवी शर्मा



प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१०

मूल्य : ९.०० रुपये

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

आज की उपद्रव रहित स्थिति देखकर नारी जागरण की समस्या को समस्या ही न मानने वाले लोग यदि गंभीरतापूर्वक विचार करें तो उन्हें लगेगा कि यही सबसे प्रमुख समस्या है और अपना समाधान आज ही माँगने का आग्रह कर रही है।

संसार के सभी देशों की महिलाओं की अपने-अपने ढंग की समस्याएँ हैं। उन सबको तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद समझा जा सकता है कि हमारे देश की महिलाओं के पिछड़ेपन की समस्या और भी अधिक कष्टकारक है। उसे सुलझाने को विवेकशील वर्ग ने चुनौती फेंकी है। समाधान आवश्यक है और वह होना चाहिए।

मुद्रक :

युग निर्माण योजना प्रेस,

गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

नारी समस्या के समाधान का समय आ पहुँचा

नव जागरण की इस पुनीत वेला में अपने युग की अति महत्त्वपूर्ण माँग यह है कि नारी उत्कर्ष को समय की सबसे बड़ी आवश्यकता माना जाए और उसके लिए प्रबल प्रयत्न किया जाए। लोकमंगल की अनेकानेक प्रवृत्तियाँ चलती रहती हैं, परमार्थ परायण व्यक्ति उन्हें अग्रगामी बनाने के लिए बहुत कुछ करते भी रहते हैं। पर इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि नारी समस्या को सुलझाने की ओर उतना ध्यान नहीं दिया जाता, जितना कि आवश्यक है। आदत में सम्मिलित हो जाने पर कितनी ही अवांछनीय दुष्प्रवृत्तियाँ भी सह्य हो जाती हैं। सह्य ही नहीं, प्रिय भी लगने लगती है। कालांतर में वे सामान्य व्यवहार जैसी लगने लगती हैं और परंपरा के रूप में उन्हें मान्यता मिल जाती है। नशेबाजी इसी स्तर की आदत है। अगणित कुरीतियाँ, मूढ़ताएँ, अंध मान्यताएँ, इसी आधार पर प्रचलित हैं। विवेक और तथ्यों के आधार पर उनका पर्यवेक्षण किया जाए तो प्रतीत होगा कि वे दुष्प्रवृत्तियाँ कितनी अधिक हानिकारक हैं। फिर भी लोग न केवल उन्हें सहन करते हैं वरन् उनके पक्ष समर्थन के लिए भी कटिबद्ध रहते हैं। नारी समस्या के संबंध में प्रायः यही हुआ है।

अवांछनीय प्रचलनों का भी मनुष्य अभ्यस्त और समर्थक बन जाता है। हर व्यक्ति को अपने दोष-दुर्गुण सहन ही नहीं होते, प्रिय भी लगते हैं। कोई दूसरा उनकी हानि बताता है और छोड़ने के लिए कहता है, तो बुरा भी लगता है और आत्म-सुधार की अपेक्षा उस बताने वाले को ही निंदक, विद्वेषी ठहराकर शत्रुवत् व्यवहार किया जाता है।

कुछ ऐसा ही विचित्र घटनाक्रम नारी के संबंध में भी हुआ है। अंधकार युग में दुर्बलों का समर्थन द्वारा शोषण करने का जंगली कानून चला तो उसकी चपेट में बेचारी नारी भी आ गई। शोषितों और शोषकों को अपना-अपना भाग्य, ईश्वर की इच्छा, विधि का विधान आदि कहकर, यथास्थिति अपनाए रहने के लिए रजामंद किया

गया। इस सामंती शोषण का समर्थन करने में ही पुरोहितों का लाभ था, अस्तु उन्होंने भी उसी प्रचलन पर अपनी मुहर लगा दी। श्लोक गढ़ने में उन्हें कितनी देर लगती थी ? तब से लेकर अब तक नारी चरण-दासी बनी हुई है और नर, कम से कम नारी के लिए तो सर्वशक्तिमान-कर्ता, भर्ता, हर्ता पति-परमेश्वर बना चला आ रहा है।

स्नेह-सौजन्य के, मैत्री सद्भाव के आधार पर लोग एक-दूसरे के लिए सब कुछ निछावर करते और प्राण देते हैं। इसमें घनिष्ठ आत्मीयता के सघन सद्भाव भरे होते हैं। ऐसी प्रगाढ़ मैत्री नर-नर में, नारी-नारी में और नर-नारी में हो सकती है, पर उसमें बाधित विवशता के लिए गुंजायश नहीं है जैसी कि आज नर और नारी के बीच चल रही है। सौजन्य एकांगी नहीं हो सकता। एक पक्षीय प्रतिबंधों के आधार पर मार-कूट कर भक्ति कराई जाए तो वह विवशता भरी विडंबना बनकर ही रह जाएगी। उसमें न भक्ति करने वाले को संतोष होगा, न इष्टदेव को। नर-नारी के बीच अटूट आत्मीयता का स्वर्गीय आनंद उभयपक्षीय श्रद्धा समर्पण के आधार पर ही उपलब्ध हो सकता है। दांपत्य जीवन में वही अभीष्ट है।

ढर्रा चल रहा है तो उसे ऐसे ही क्यों न चलने दिया जाए ? पुरुष को लाभ प्रतीत होता है और नारी भी उसकी अभ्यस्त हो गई है, तो इस प्रसंग में क्यों छेड़छाड़ की जाए ? ऐसे विचार पुरातन पंथी अक्सर प्रकट करते रहते हैं। यथास्थिति बने रहने में उथल-पुथल के झंझट से तो बचा जा सकता है, पर अवांछनीयता गले से लिपटी रहने के कारण जो हानि हो रही है, उससे नहीं बचा जा सकता। उज्ज्वल भविष्य की संभावनाओं का सृजन करने के लिए जिन आधारों की स्थापना आवश्यक है, वे भी यथास्थिति बनाए रखने से बन नहीं पड़ेंगे। लकड़ी में लगा घुन अपना काम करता रहे, क्षय के कीटाणु शरीर को गलाते रहें, यदि यही अभीष्ट हो तो ही, फेर-बदल करने के झंझट से बचा जा सकता है।

फोड़े के ऊपर खुरंट जमा हो और भीतर मवाद सड़ रहा हो तो यह देखकर चुप बैठे रहना ठीक नहीं कि वहाँ घाव या स्राव दिखाई नहीं पड़ता। यदि आदत के अनुसार जो चल रहा है, उसी को मान्यता दे दी जाए तो फिर नशेबाजी के विरुद्ध भी यह तर्क दिए जाएँगे कि पीने और पिलाने वाले दोनों ही प्रसन्न हैं, तस्कर,

षड्यंत्रकारी तथा रिश्वत देने और लेने वाले भी परस्पर मिली भगत बनाए रहते हैं। इन्हें परस्पर किसी से कोई शिकायत नहीं होती। दहेज लेने-देने वाले दोनों ही किसी बाहर वाले का हस्तक्षेप पसंद नहीं करते। सटोरिये, जुआरी व्यभिचारी अपने ग्राहकों के साथ इस प्रकार की पटरी बिठाते हैं, जिससे पंच फैसले की-सरकारी दरबार की आवश्यकता न पड़े। कोई झगड़ा, झंझट खड़ा नहीं हो रहा है इसलिए इन दुरभिसंधियों को रोकने की, उनके बारे में चिंतन करने की आवश्यकता नहीं है, यह कोई तर्क नहीं है, इसका अर्थ तो यह हुआ कि जब अभी कोई विग्रह, उपद्रव खड़ा हो, तभी उसे समस्या समझा जाए और तभी उसके विषय में कुछ सोच-विचार किया जाए, यह अनुचित है।

यह बहुत ही छोटी दृष्टि है कि विग्रह को ही समस्या माना जाए। बाढ़, तूफान, भूकंप आदि के कारण उत्पन्न हुई विशृंखलता संभालने के लिए तो भाग-दौड़ की जाए, पर विशाल भू-भाग को घेरे हुए रेगिस्तान को हरा-भरा बनाने की बात सोचने से इस आधार पर इनकार कर दिया जाए कि इस क्षेत्र में कोई अशांति फैली दिखाई नहीं पड़ती।

उर्वरकता न होना भी उतना ही कष्टकारक है जितना निरंतर ओले बरसने या टिड्डी दल के आक्रमण से हरी-भरी फसल का चौपट हो जाना। महामारी के कारण कोई पूरा क्षेत्र जन शून्य हो जाए और जीवन के साधन न रहने के कारण लोग किसी क्षेत्र को छोड़ दें तो उपद्रव होने या न होने पर परिणाम तो एक ही रहा। किसी बड़े इलाके का जन शून्य हो जाना और उसका निरूपयोगी हो जाना उतना ही कष्टकारक है, जितना कि भयंकर अग्निकांड होने के कारण वहाँ सब कुछ स्वाहा हो जाना। अग्निकांड और महामारी उपद्रव के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। इसलिए मोटी बुद्धि उसे विपत्ति मानती है और उसके निवारण का उपाय सोचती है। सूक्ष्म दृष्टि अनुत्पादक रिक्तता को एक कठिनाई मानती है और नदी पर पुल बन जाने से यातायात की सुविधा बनाने को भी एक बड़ा काम मानती है। नदी तट पर ही कोई झंझट खड़ा न होने के कारण यह नहीं मान लेना चाहिए कि उस अवरोध के कारण कोई हानि नहीं होती। विचारशील मस्तिष्कों ने अनुत्पादक ऊबड़-खाबड़ जमीनों को हरी-भरी

बनाया है। गहरे समुद्र के ऊपर चलने वाले जलयानों और आकाश में उड़ने वाले वायुयानों की संरचना की गई है। दूरदर्शी लोगों की ही यह सूझ-बूझ थी, जिसने समुद्र और आकाश को यातायात का साधन बनाने में सफलता प्राप्त की। ऐसे ही विचारशील मस्तिष्कों का कर्तव्य है कि वे नारी का स्तर गिरने के कारण हो रही भौतिक एवं आत्मिक अवगति पर विचार करें, उसकी विभीषिका समझें और अवांछनीयता के निराकरण की प्रभावशाली योजना बनाएँ।

यों नारी के सम्मुख प्रस्तुत प्रतिबंधजन्य कठिनाइयों का समाधान भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, पर उससे भी अधिक महत्त्व की बात यह है कि अविकसित स्थिति में पड़ी हुई नारी को पुरुषों के समतुल्य ही सुयोग्य बनाकर, उसकी प्रतिभा से वह लाभ उठाया जा सकता है, जिसके बिना समूची मानव जाति की प्रगति अवरुद्ध पड़ी है। संपत्ति उपार्जन के आधार, कल-कारखाने, कृषि फार्म, व्यवसाय संस्थान, यातायात साधन आदि हो सकते हैं। पर संस्कारवान और सुविकसित मानव समाज का निर्माण भी यदि आवश्यक समझा जाए तो यह मानकर चलना होगा—आत्मिक प्रगति का व्यक्तित्व की प्रखरता का, यदि कोई मूल्य समझा जाए तो स्वीकार करना होगा कि यह एकाकी नर के बूते की बात नहीं है।

आज की उपद्रवरहित स्थिति देखकर नारी जागरण की समस्या को समस्या ही न मानने वाले लोग यदि गंभीरतापूर्वक विचार करें तो उन्हें लगेगा कि यही सबसे प्रमुख समस्या है और अपना समाधान आज ही माँगने का आग्रह कर रही है।

यूरोप के जिन देशों ने भी आर्थिक, वैज्ञानिक और सामाजिक क्षेत्र में प्रगति की है, उसका कारण यह नहीं है कि परमात्मा ने उन देशों और अन्य देशों के साथ पक्षपात किया है तथा उन्हें अधिक सुविधाएँ दी हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि व्यक्ति हो या समाज, जो भी अपनी क्षमताओं के लिए अधिक प्रयत्न करेगा और अधिक समय देगा, उसे अभीष्ट सफलता मिलेगी। वहाँ के लोग इस दिशा में अधिक ध्यान दे पाते हैं, वह इसलिए कि उनके पारिवारिक दायित्व इतने अधिक बोझिल नहीं होते कि उनको निभाना ही कठिन पड़ जाए।

परिवार संस्था की दो इकाई है, स्त्री और पुरुष। उसे मजबूत तथा संपन्न बनाने के लिए आवश्यक है कि पति और पत्नी दोनों ही मेहनत करें। यह नहीं हो कि एक-दूसरे के कंधे पर सवार होकर, दूसरे साथी का बोझ बढ़ाएँ। पश्चिम में परिवार संस्था टूटती जा रही है, पर उसके कारण और हैं। जहाँ तक समाज के विकसित होने का प्रश्न है; यह अनिवार्य रूप से आवश्यक है कि स्त्री और पुरुष दोनों ही इसके लिए प्रयत्न करें। पश्चिम की प्रगति का यही रहस्य है कि वहाँ की स्त्रियाँ पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर सहयोग करती हैं और हर क्षेत्र में प्रगति के लिए प्रयत्नशील रहती हैं।

उदाहरण के लिए एक छोटे-से उन्नत देश रूमानियाँ को ही लें। वहाँ का जनवादी विधान महिलाओं को भी पुरुषों की बराबरी का अधिकार देता है। राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में महिलाओं को भी दायित्वपूर्ण उच्च पदों पर बेरोकटोक नियुक्त किया जाता है। लगभग २०० की संख्या वाले उच्च राजनैतिक पदों में से ७६ पर महिलाएँ नियुक्त हैं। छोटे क्षेत्रीय संगठनों में ३६७६५ महिलाएँ काम करती हैं। २८ प्रतिशत महिलाएँ अपने परिवार का खर्च स्वयं चलाती हैं। उद्योग-धंधों के क्षेत्र में, जो पुरुषों के ही बस का समझा जाता है, ३ लाख ८० हजार महिलाएँ कार्यरत हैं। ६० लाख से भी अधिक महिलाएँ व्यापार प्रबंध संभालती हैं। लगभग ६० हजार महिलाएँ उच्च प्रशिक्षण प्राप्त कर रही हैं तथा महिलाओं की कुल संख्या का ४.१ प्रतिशत स्त्रियाँ इंजीनियरी और तकनीकी कार्यों में लगी हुई हैं और १३ प्रतिशत कार्यालयों में काम करती हैं। इसके अतिरिक्त ४ हजार महिलाएँ उच्च शिक्षण-संस्थानों में अध्यापन कार्य करती हैं। ६५ प्रतिशत स्त्रियाँ स्वास्थ्य और सामाजिक क्षेत्रों में कार्यरत हैं।

अपने देश में नारी को वैधानिक दृष्टि से तो पुरुषों के समान ही अधिकार प्राप्त हैं, पर अभी वैसी स्थिति नहीं है कि वह उन अधिकारों का उपयोग कर सकें और उनसे लाभ उठा सकें। वह राजनैतिक क्षेत्र में निर्वाध प्रवेश प्राप्त कर सकती है, उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए, उनके मार्ग में कोई रुकावट नहीं है। महत्त्वपूर्ण प्रशासकीय पदों पर महिलाएँ नियुक्त की जाती हैं। परंतु इन अवसरों से लाभ उठाने वाली महिलाओं की संख्या सीमित ही है। अधिकांशतः

महिलाएँ तो वही परंपरागत जीवन जी रही हैं। दूसरे देशों में जागरूक महिलाओं ने पुरुषों के समान अधिकार संघर्ष कर और आंदोलन चलाकर प्राप्त किए हैं। जबकि अपने देश में ये अधिकार स्वतः ही प्राप्त हो गए हैं। फिर भी उनसे लाभ उठाने की स्थिति अभी नहीं बन पाई है।

इसका कारण है अभी भी सामंत युग का वही दृष्टिकोण अपनी जड़ें जमाए हुए हैं, जिसके अनुसार नारी को पुरुष की आश्रिता और संरक्षिता ही समझा जाता था। एक समय ऐसा भी था जब नारी को समाज में कम महत्त्व का व्यक्ति समझा जाता था। यहाँ तक कि एक वर्ग तो उसमें आत्मा के अस्तित्व को भी नहीं मानता था।

अब स्थिति बदली है। फिर भी परोक्ष दुर्व्यवहार में अभी भी अंतर नहीं आया है। ऐसे व्यवहार आए दिन दृष्टिगोचर होते रहते हैं और वे स्वभाव के अंग भी बन गए हैं। अधिक प्रजनन के कारण अपना शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य चौपट कर बैठी—हजारों, लाखों स्त्रियाँ बार-बार गर्भ धारण करने और अशक्त असमर्थ रहने पर भी संतान का पालन-पोषण करने का गंभीर उत्तरदायित्व उठाते रहने से २०-२२ वर्ष की उम्र में ही अघेड़ वृद्धा-सी लगने लगती है।

यह एक तथ्य है कि नारी की समर्पण भावना का अनुचित लाभ उठाकर पुरुष आरंभ से अब तक स्वयं को उनका स्वामी और अधिकारी समझता रहा है। आदमी रुपए-पैसों का मालिक हो सकता है; धन-संपदा का मालिक हो सकता है; पर किसी दूसरे मनुष्य पर तो अपनी मालकियत नहीं रख सकता। हाँ दूसरा व्यक्ति उसके प्रेम का गुलाम जरूर बन सकता है, पर ऐसी स्थिति में कोई भी दूसरे के प्रति मालिकी का भाव नहीं रखता। पति स्वयं को पत्नी का मालिक समझता है और उस पर उसी तरह अपना शासन चलाता है, यह इस बात का प्रतीक है कि स्त्री पर अब भी जमीन-जायदाद की तरह मालकियत का अधिकार समझा जाता है। इस विकृत दृष्टिकोण के कारण पुरुष, स्त्री के साथ वैसा ही व्यवहार करता है, जैसे कोई गड़रिया अपनी भेड़-बकरियों के साथ। महात्मा गांधी ने पुरुष की इस बर्बरता के प्रति आक्रोश व्यक्त करते हुए एक स्थान पर कहा है—“औरतों का अधिकांश समय पुरुषों की सेवा में तथा महज उनके मनोरंजन और वासना पूर्ति का साधन बनने में ही व्यतीत हो जाता

है। यह दासता नहीं तो और क्या है ? मैं तो इसे पुरुष की बर्बरता की क्रूर निशानी कहूँगा।”

अभी पिछले दिनों तक स्त्रियों की चोरी तक की जाती रही है। पिछड़े क्षेत्रों में आज भी वह प्रचलित है। असामाजिक तत्व भोली-भाली स्त्रियों को बहला-फुसलाकर उनका अपहरण कर लेते हैं और उन्हें दूसरी जगह ले जाकर बेच देते हैं। एक बार इस विडंबना की शिकार हुई स्त्री के लिए फिर समाज के सभी द्वार बंद हो जाते हैं।

नारी के प्रति यह वासनात्मक दृष्टिकोण ही पुरुष को वैसी परिस्थितियाँ पैदा करने के लिए मजबूर करता है, जिससे वह अपनी गई-गुजरी हालत से ऊपर न उठ सके। खेद का विषय है कि इसी कारण अभी तक लड़कियों को पढ़ाने-लिखाने की आवश्यकता उतनी नहीं समझी जाती जितनी कि समझी जानी चाहिए और न स्त्रियाँ समझदार होने पर स्वयं सुसंस्कृत बनने का प्रयास करती हैं। दोष उनका नहीं है वरन् उत्पन्न की गई वे परिस्थितियाँ हैं, जिनमें स्त्रियाँ अपने स्वरूप को ही पहचान नहीं पातीं। सर्वतोमुखी प्रगति के लिए प्रोत्साहन मिलने के स्थान पर तथाकथित शुभ-चिंतकों एवं संबंधियों द्वारा उन्हें निरुत्साहित ही किया जाता है। विपन्न परिस्थितियों से संघर्ष करने के लिए कोई स्त्री जीविका-उपार्जन के लिए घर से बाहर कदम भी उठाती है, तो उसके चरित्र पर तरह-तरह से आक्षेप किए जाते हैं। इन संकुचित धारणाओं के कारण परंपरागत वातावरण में पली स्त्रियाँ आगे बढ़ने का साहस तक नहीं कर पाती हैं।

नारी के प्रति पुरुष वर्ग की मान्यताएँ गिरी हुई हैं, नारी-दुर्दशा का कारण वही है और इस कारण वह आजीवन पुरुष के कंधों पर एक अस्वाभाविक बोझ बनकर रहती है। आश्रयरहित स्त्रियों की समस्याओं का अध्ययन करना हो तो उन स्त्रियों का जीवन सामने हैं, जिनके पति की असमय में मृत्यु हो गई है और चल रहे रोजगार, व्यापार, व्यवसाय तथा जमीन-जायदाद को जान-बूझकर दूसरों के भरोसे छोड़ना पड़ जाता है। उन्हें विवश होकर किसी पास के या दूर के पुरुष संबंधी का सहारा लेना पड़ता है, जो प्रायः उसे लूटकर अपना घर भरने लगता है। बेचारी विवश नारी जानते-बूझते भी यह सब देखने और सहन करने के लिए मजबूर रहती है। इसके

अतिरिक्त सधवा महिलाओं को भी अपने परिवार की व्यवस्था के लिए पति पर निर्भर रहना पड़ता है।

समाज के उत्थान और देश को शक्ति-संपन्न बनाने के लिए यह आवश्यक है कि नारी का सहयोग भी प्राप्त किया जाए और उसे इस योग्य बनाया जाए कि वह निर्माण यज्ञ में अपनी भी समुचित भूमिका निभा सके। इसके लिए हमें अपने दृष्टिकोण में आमूल-चूल परिवर्तन करना होगा; जो हम सदियों से विरासत में प्राप्त करते आ रहे हैं। वह यह है कि नारी पुरुष की पिछलग्गू और आश्रिता मात्र है। उसका न कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व है, न अलंग से कोई अस्तित्व। वह एक मानव इकाई नहीं बल्कि पुरुष के मन-बहलाव और विविध विधि सेवा प्रयोजन पूरा करने का साधन भर है।

इस धारणा के फलस्वरूप यदि स्त्रियाँ ऐसी ही पिछड़ी और अविकसित स्थिति में पड़ी रहीं तो संसार के उन्नत देशों की तुलना में हमारे सदैव पिछड़े रहने का भयंकर दुष्परिणाम सामने है। स्मरणीय है कि प्रकृति ने स्त्री को पुरुष का पूरक और सहायक बनाया है। उसे इसी रूप में महत्त्व दिया जाना चाहिए। अन्यथा वर्तमान दृष्टिकोण के रहते वह भार स्वरूप, बाधा उपस्थित करने वाली और प्रगति को अवरुद्ध करने वाली ही सिद्ध होगी। समाज और राष्ट्र की प्रगति में बाधा डालने वाले इस दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने के लिए व्यापक प्रयास चलें तो ही बात बनेगी। नारी की समस्या किसी एक देश की समस्या नहीं संसार के सभी देशों की महिलाओं की अपनी-अपनी अलग ढंग की समस्याएँ हैं। उन सबका तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद समझा जा सकता है कि हमारे देश की महिलाओं के पिछड़ेपन की समस्या और भी अधिक कष्टकारक है। उसे सुलझाने को विवेकशील वर्ग ने चुनौती फेंकी है। समाधान है और वह होना ही चाहिए।

परमात्मा की सृष्टि में सारा विश्व एक ही केंद्रिय शक्ति से गतिमान है। जिस प्रकार माला में फूल एक ही धागे से पिरोए जाते हैं, उसी प्रकार सारा विश्व उसी शक्ति रूपी धागे में पिरोया गया है। यहाँ माला के फूल की भाँति सभी समान हैं। ईश्वर की दृष्टि में हम सब समान हैं। जिस प्रकार पिता अपने लड़कों को समान मानता है,

उसी प्रकार हम सब एक ही ईश्वर की संतान हैं। पिता की दृष्टि में लड़का-लड़की समान हैं, उसी तरह हम सब नर-नारी भी समान हैं।

सर्वांगीण प्रगति से ही हमारा शरीर समुन्नत हो सकता है। यदि शरीर के विभिन्न अंग एक साथ उन्नति न करें या कोई अंग बिल्कुल अछूता ही रहे तो शरीर कुरूप बन जाएगा, उसकी कीमत गिर जाएगी और संतोषजनक परिणाम संभव नहीं होगा। जैसे पैरों में एक पैर मोटा और एक पैर पतला हो जाए तो क्या वह आदमी अपने जीवन में उन्नति कर पाएगा ? कदापि नहीं। उसी प्रकार धन का भी है धन से भौतिक वस्तुओं का खरीदना संभव है लेकिन व्यक्तित्व नहीं खरीदा जा सकता। परिवार में आर्थिक उपार्जन कर लिया जाता है और संभव भी है, लेकिन उसके साथ-साथ शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास की ओर ध्यान नहीं दिया गया तो वह धन मात्र कलंक की जड़ बन जाएगा और परिवार को गर्त में गिरा देगा।

धन की उपयोगिता है। यह हमारे जीवन में आवश्यक भी है। धनोपार्जन किए बिना हम उन्नति नहीं कर सकते। लेकिन धन केवल जीने के लिए है, न कि संचय के लिए। यदि इसके बावजूद भी कुछ बचा रहता है तो उसके सदुपयोग की बात सोचनी चाहिए। कहा गया है कि सौ हाथों से धनोपार्जन कर और हजार हाथों से दान कर। धन कमाना सरल है लेकिन उसका सदुपयोग करना अति दुस्तर काम है। अमीर लोगों के पास धन है, लेकिन कष्टमय जीवन व्यतीत करते हैं—उनके वारिस उन्हें सुख-शांति से नहीं रहने देते। कारण स्पष्ट है कि उन्होंने धन कमाना ही सीखा है, उसका सदुपयोग करना नहीं सीखा। उनको तथा हर अमीर परिवार के मुख्य सदस्य को चाहिए कि धनोपार्जन के साथ-साथ पारिवारिक समस्या की उन्नति पर भी खर्च करें। मात्र कॉलेज में पढ़ाकर, उनका कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता, भले ही उनके बाल-बच्चे पढ़कर नौकरी प्राप्त कर लें। लेकिन सच्चे नागरिक—कॉलेज की पढ़ाई से नहीं बन सकते। व्यक्ति-निर्माण के लिए नारी-उत्थान की आवश्यकता है, तभी परिवार-निर्माण व समाज निर्माण संभव है। परिवार के सदस्य मूर्ख है तो धन की उपयोगिता न जानकर, दुरुपयोग कर अपकीर्ति, कलह एवं

पापाचारों को ही प्रोत्साहन देंगे और दंड पाने के उत्तराधिकारी रहेंगे।

धन की उपयोगिता को हम समझें। धन कमाकर उसे परिवार की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति में लगा देते हैं। हमने कभी भी ध्यान दिया है कि धन का उपयोग परिवार के सदस्यों के नैतिक-स्तर को बढ़ाने में, बौद्धिक विकास करने में, आत्मिक शक्ति का अभिवर्धन करने में करें। इन्हीं गुणों का अभिवर्धन हो तो हमारे सच्चे धन की सदुपयोगिता कही जा सकती है एवं परिवार के प्रति यही सच्ची सेवा एवं सहानुभूति कही जा सकती है।

हम देखते हैं कि नारी के बिना परिवार उसी प्रकार का है, जिस प्रकार पंच-तत्त्व से विनिर्मित यह शरीर प्राण के बिना हो जाता है अर्थात् नारी परिवार के लिए प्राण के समान है, लेकिन हमने आज उसे मात्र दासी की श्रेणी में रखा है, भोग्या मानकर उसकी उपयोगिता को सीमित कर दिया है, अछूत मानकर उसे समाज में स्थान नहीं दिया है। हमने नारी के प्रति क्या-क्या अत्याचार नहीं किये हैं? नारी को अबला की श्रेणी में रखकर, उसका अपमान किया है। हम अपने शरीर का आधा अंग बेकार कर चुके हैं और मूर्ख के समान सुख की कल्पना करते हैं। यदि हमें अपना हित करना है, परिवार एवं समाज तथा विश्व का कल्याण करने की कल्पना करनी है तो नारी को अपने समान स्तर पर लाकर ही कर सकते हैं। नारी उत्थान करके ही हम विश्व के कल्याण की बात सोच सकते हैं। यही सोचना हमारी सच्ची कल्पना है, नहीं तो निरर्थक कल्पना हो जाएगी।

प्राचीन-काल में नारियों को कितना अधिक गौरव प्राप्त था, नारी वर्ग ने अपना योगदान समाज कल्याण के लिए पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर दिया है। उन्होंने स्वयं ही वेद-मंत्रों का प्रतिपादन किया है। लेकिन आज हम स्त्रियों को वेद-मंत्रों से दूर रखने की चेष्टा करते हैं, यह कितनी विडम्बना है? हमें भगवान के नियम का उल्लंघन नहीं करना है और नारी वर्ग को समान अधिकार प्रदान कर साथ-साथ चलने को बाध्य करना है। पहिले हमारे देश में नर-रत्न पैदा हुआ करते थे। अभिमन्यु जिन्होंने अपने गर्भावस्था में ही 'चक्रव्यूह' तोड़ने की विधि को ज्ञात

कर लिया था। आज हम यह भी मानते हैं कि माता के ही कारण उसके पेट का नन्हा-सा बालक जीवित रहता है, अपना पोषक-तत्त्व माँ के शरीर से ही प्राप्त करता है और हम बच्चे की माँ के रहन-सहन एवं खान-पान पर विशेष ध्यान देते हैं।

बच्चे का निर्माण माता ही कर सकती है। जिस तरह अन्न का प्रभाव मर्न पर पड़ता है, उसी प्रकार माँ का प्रभाव बच्चे के ऊपर पड़ता है, नारी यदि सुविकसित है, तो बच्चा योग्य होता चला जाएगा। गर्भ से लेकर आत्म-निर्भर होने की समयावधि तक बच्चा—माँ की प्रतिभा से प्रभावित होकर, अपना संस्कार बनाते हुए देश-रत्न एवं विश्व-रत्न की श्रेणी में पहुँच सकता है। माता जितनी सुसंस्कृत होगी, बच्चा भी उससे ओत-प्रोत हुए बिना नहीं रह सकता। कोई भी सच्चा एवं समुन्नत व्यक्तित्व का मनुष्य कभी भी अपने बच्चे को गलत दिशा में नहीं जाने देगा। उसी प्रकार नारी भी अपने ज्ञान के अनुसार सुयोग्य बनाने की कोशिश करेगी। नारी जहाँ कहीं भी अशिक्षित एवं संस्काररहित होगी, वहाँ निरंतर क्रोध, कलह, असंतोष, अवज्ञा तथा अपकीर्ति का साम्राज्य होगा और वह घर मरघट के समान हो जाएगा, जहाँ भूतों ही भूतों का साम्राज्य दिखाई पड़ता है।

आज हमें, राम, कृष्ण, अभिमन्यु, हनुमान आदि की आवश्यकता है तो कौशल्या, देवकी, सुभद्रा और अंजनी जैसी माताओं की भी तलाश करनी होगी और वह तभी संभव है—जब हम नारीवर्ग को विकसित करें। आज की नारी—श्रवण कुमार, भरत, लक्ष्मण जैसे पुत्र पैदा करने में असमर्थ हैं और इसका एकमात्र कारण है, नारीवर्ग को विकसित न होने देना। जब नारी ही समुन्नत नहीं है तो सुसंतान की प्राप्ति मात्र ख्वाब ही होगा, जो कभी पूरा होने वाला नहीं है।

नारी उत्थान को प्रथम स्थान देना अति आवश्यक है, क्योंकि नारी के विकास से सभी समस्याएँ स्वयं ही हल हो जाएँगी। भिक्षुक-समस्या को ही ले लीजिए। भिक्षुकों की पैदाइश जन्म-जात नहीं होती। माँ यदि अशिक्षित है, संस्कार रहित है तो उसका बच्चा भी कुसंस्कारी ही होगा और माँ को भी गर्त में गिरा डालने की भावना रख सकता है। हमें रूढ़िवादी प्रथाओं को

मिटाना होगा, यदि हम सच्चे मायने में माता, बहिन, पत्नी को सुख देने की चाह रखते हैं। क्या हमने कभी सोचा है कि हमारे मरने के बाद पत्नी-बेटी, जो कभी घर से बाहर नहीं निकलीं, उनकी क्या दशा होगी ? संपत्ति दो दिन की मेहमान है, कल चली जाएगी। पुरुषार्थी का ही संसार में रहना योग्य है। अस्तु नारी वर्ग को पर्दा-प्रथा से दूर रखना चाहिए। प्राणीमात्र के लिए सारा विश्व एक परिवार के समान है, अतः पर्दा करने की तनिक भी जरूरत नहीं है। नारीवर्ग को इतनी तो कोशिश करनी ही चाहिए कि समयानुकूल प्रत्येक नारी अपने पैरों पर खड़ी हो सके और दूसरों के सामने हाथ न फैलाना पड़े।

नारी उत्थान समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है। उसका महत्त्व अथाह समुद्र के समान गहरा है। उसके विषय में जो भी कहेंगे—थोड़ा ही है। लेकिन मुख्य बात यह है कि हमें आज ही से नारी-जागरण का कार्य शुरू कर देना चाहिए, तभी विश्व-कल्याण का कार्य कर सकना संभव हो सकता है।



नारी का पिछड़ापन दूर किया जाए, उसे सुविकसित होने दिया जाए

नारी वर्ग को जिस स्थिति में चिरकाल से रहना पड़ा है, उसका प्रभाव न केवल उसकी सामाजिक स्थिति पर पड़ा है, वरन् शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक स्थिति को भी बेतरह गिरा देने का कारण बना है। सुशिक्षित कही जाने वाली महिलाएँ भी उपलब्ध ज्ञान का कोई महत्त्वपूर्ण उपयोग नहीं कर पातीं। घरों की चहारदीवारी में कैद रहने की परिस्थिति ने उस ज्ञान का लाभ समाज को मिलने के मार्ग में भारी व्यवधान उत्पन्न कर दिया है। आजीविका उपार्जन भी उसके सहारे बहुत कम को ही मिल पाता है।

सामान्य नारी की स्थिति उपेक्षित, तिरस्कृत एवं प्रतिबंधों से जकड़ी हुई है। घूँघट, पर्दे में लिपटी हुई, छोटे-से घर (पिंजड़े) में जकड़ी हुई, रसोईदारिन, चौकीदारिन और भोग्य-पदार्थों के स्तर पर निर्वाह करती हुई नारी अपनी जीवन-संपदा का ऐसा कुछ उपयोग नहीं कर पाती—जिस पर संतोष व्यक्त किया जा सके। पोषण के अभाव, काम के दबाव एवं उपेक्षा भरी नीरसता के दबाव में उसका शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य लड़खड़ाता चला जाता है। अव्यवस्थित और अस्त-व्यस्त स्थिति में कोई कब तक निरोग रह सकता है ? गर्भधारण से लेकर शिशु-पालन तक के कष्ट-साध्य कार्य में कितनी जीवनी-शक्ति नष्ट होती है, उसका अनुभव वही कर सकता है, जिसे यह दुःसह उत्तरदायित्व स्वयं अपने कर्षों पर वहन करना पड़ता है।

इतने पर भी यदि उसे परिवार का समुचित सम्मान और सहयोग मिला होता तो संभवतः वह मनुष्य जाति के वरिष्ठ पक्ष की भूमिका निभा सकती थी। पर अनवरत श्रम-संलग्न रहने पर भी न शारीरिक सुविधा, न आर्थिक लाभ और न मन में उत्साह, न संतोष बनाए रहने वाला श्रेय सम्मान। ऐसी दशा में कोल्हू के बैल की तरह

एक नीरस चक्र की धुरी पर घूमती रहने वाली नारी को अपनी स्थिति की निराशा और व्यथा अनुभव होती हो और खीज उटती हो तो आश्चर्य ही क्या है ? कहना न होगा कि यह स्थिति पिछड़ेपन की ही सूचक है, भले ही उसके परिवार के लोग कितनी ही संपन्नता का दम भरते हों। क्या शिक्षित, क्या अशिक्षित क्या अमीर, क्या निर्धन सभी स्थिति न्यूनाधिक मात्रा में एक जैसी ही, लगभग मिलती-जुलती-सी है।

पिछड़ापन एक अभिशाप है, उससे ग्रसित मनुष्य अपने व्यक्तित्व को परिष्कृत नहीं कर पाता। आत्महीनता उस पर छाई रहती है। संकोच भार से दबते-दबते वह अपनी अभिव्यक्तियों तक को प्रकट नहीं कर पाता और भीतर ही भीतर घुटता रहता है। समय-कुसमय के लिए जो स्वतंत्र रूप से कुछ उपार्जन कर लेने में समर्थ नहीं है, स्वावलंबन के योग्य जिसकी क्षमता का विकास नहीं हुआ है, उसे परावलंबन के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही नहीं। प्रतिभा उनकी विकसित होती है, जो स्वभाग्य निर्माण की, स्वावलंबन की स्थिति अनुभव करते हैं। नारी जिस वातावरण में अवरुद्ध है, उसमें उसे इस प्रकार के स्वप्न भी नहीं आते। अपने को असहाय अनुभव करने वाली मनःस्थिति में पड़ा हुआ व्यक्ति अधिक से अधिक इतना कर सकता है कि मजूरी करके पेट भर ले। जीवन का आनंद देने वाली प्रतिभा का विकास करने वाली, संतोष और गौरव अनुभव करने वाली गतिविधियाँ अपना तो उसके लिए संभव ही नहीं हो पाता। नारी घर की शोभा या आवश्यकता मात्र बनाकर रख दी जाती है। घर मुख्य होता है, उसे सँजोने-सजाने वाली परिचारिका भर का योगदान पिछड़ी नारी दे पाती है। यह कैसी दयनीय और दुर्भाग्यपूर्ण विडंबना है, कि "सृजन की देवी" कहलाने वाली नारी मात्र एक गए-गुजारे श्रमजीवी की भूमिका भर निभा सके और इसमें आगे की कोई बड़ी बात उससे न बन पड़े।

नारी का पिछड़ापन आधे मानव-समाज की अपंगता का प्रश्न है। यह एक बहुत बड़ी समस्या है। रोटी, कपड़ा और मकान का प्रबंध हो जाना ही सब कुछ नहीं है। मनुष्य जीवन की गरिमा गुजारे का प्रबंध बन पड़ने मात्र से संतुष्ट नहीं हो सकती, उसे और भी कुछ चाहिए।

सामाजिक न्याय मिलने पर नारी को क्या मिलेगा ? इस प्रश्न के उत्तर में स्वाभिमान और स्वावलंबन की स्थिति प्राप्त करने का अधिकार ही कहा जा सकता है। श्रम की दृष्टि में संभवतः तब नारी को अपनी प्रतिभा जागृत करने के लिए और भी अधिक परिश्रम करने एवं मनोयोग लगाने की आवश्यकता पड़ेगी। स्वावलंबन की क्षमता प्राप्त करने के उत्साह में मनुष्य को अपने में विशेषताओं का संपादन करना पड़ता है और जब वे उपलब्ध होती हैं तो उनका उपयोग किए बिना भी नहीं रहा जाता। ऐसी दशा में आज की परावलंबी नारी जो अपना भार दूसरों के कंधों पर डालकर उत्तरदायित्वविहीन जिंदगी जी लेती है, तब उसके लिए उस स्थिति में रहना संभव नहीं होगा। जब वह दबाव से व्यस्त रहती है, मालिक लोग उससे रोटी-कपड़े का पूरा मूल्य वसूल करने के लिए भरपूर श्रम कराते हैं। स्वावलंबन की स्थिति में कैदी-सा श्रम तो न करना पड़ेगा, पर स्थिति वह आ जाएगी, जिसमें किसान को अपने मजदूरों से कहीं अधिक समय और श्रम अपने उत्तरदायित्व निबाहते करना पड़ता है। मोटी दृष्टि इसे नारी पर अधिक बोझ पड़ना और घाटे में रहना कहा जा सकता है, पर निश्चित रूप से वह अधिक सक्षम सुयोग्य और उत्पादक बनेगी। साथ ही इसका लाभ परिवार को तथा देश को भी मिलेगा।

सम्मानास्पद स्थिति प्राप्त करने से हर किसी का हौसला बढ़ता है। आत्म-गौरव अनुभव होने से आत्म-निर्भरता बढ़ती है। हताश और आत्महीनता-ग्रस्त व्यक्ति जिंदगी की लाश भर ढोता है। वह उन्नति की कल्पना तो कर सकता है, ऊँची उड़ानें उड़ते रहना और विविध-विधि मनोरथ करते रहना भी उसके लिए संभव हो सकता है पर अभीष्ट प्रगति के लिए जिस मनोबल की आवश्यकता है, वह उसके बूते जुट ही नहीं पाता। ऐसी दशा में वह सोचता तो बहुत है, पर कुछ कर नहीं पाता। प्रबल पुरुषार्थ के अभाव में सफलताएँ कब किसको मिल सकी हैं ? साहस भरा पुरुषार्थ करने योग्य मनःस्थिति बनने के लिए प्रोत्साहन की आवश्यकता है। प्रोत्साहन दूसरों के द्वारा चापलूसी करने और बढ़ा-चढ़ाकर प्रशंसा के पुल बाँधने को नहीं कहते, वरन् वह स्थिति है—जिसमें व्यक्ति को अपने क्रिया-कृत्यों की सफलता का बोध होता है। सम्मान मिलता है और श्रेय पा सकने का

गर्व-गौरव का अनुभव होता है। आत्म-सम्मान का तात्पर्य इसी स्थिति से है। आज नारी को दासी स्तर की मान लिए जाने के कारण यह समझा जाता है कि जो वह करती है, उसके लिए तो वह बनो ही है। उसे श्रेय-सम्मान मिलने की क्या आवश्यकता है ? पशुओं से लाभ उठाया जाता है, पर उन्हें श्रेय-सम्मान देने की आवश्यकता नहीं समझी जाती, फिर स्त्री के लिए ही किसी प्रकार की कृतज्ञता प्रकट करना अथवा श्रेय-सम्मान देना क्यों आवश्यक समझा जाए ?

नारी का पिछड़ापन दूर करने के लिए उस पर लगे असमानता सूचक प्रतिबंध हटाए जाएँ। उसे मानव-जाति का समान घटक माना जाए। जो भी नियम—आचार, कर्तव्य, अधिकार बने वे दोनों पक्षों पर समान रूप से लागू किए जाएँ। जो भी सुविधाएँ या छूटें मिलें, दोनों को उनसे लाभान्वित होने दिया जाए। न्याय दोनों को समान रूप से मिले। शरीर के प्रजनन अवयवों में थोड़ा अंतर होना इतनी बड़ी बात नहीं है, जिसके बदले एक पक्ष के मौलिक अधिकारों का ही अपहरण कर लिया जाए। हमें ऐसे समाज की संरचना करनी चाहिए, दृष्टिकोण इतना परिष्कृत करना चाहिए, जिसमें नर और नारी को बिना किसी भेद-भाव के मानवी मौलिक अधिकारों का लाभ मिले। न कोई पक्ष विशेषाधिकार संपन्न हो और न किसी को शोषित, प्रताड़ित, प्रतिबंधित होने की शिकायत करनी पड़े। सामाजिक न्याय प्रत्येक मानव-प्राणी को मिल सके—परिष्कृत दृष्टिकोण के सम्मुख यही समय की चुनौती है। प्रबुद्ध वर्ग को इसकी स्थापना के लिए अपने प्रभाव को नियोजित करना चाहिए।

नारी का पिछड़ापन दूर करने के लिए उसे शिक्षित बनने की विशेष सुविधा मिलनी चाहिए। आहत, रुग्ण एवं दुर्बल अंग का विशेष ध्यान दिया जाता है और उसकी क्षतिपूर्ति के लिए अतिरिक्त साधन जुटाए जाते हैं। चिरकाल से लदे हुए पिछड़ेपन को दूर करने के लिए शिक्षा की नितांत आवश्यकता है। इसके लिए लड़कियों के लिए स्कूली-सुविधा मिलनी चाहिए और वयस्क महिलाओं के लिए प्रौढ़-शिक्षा का प्रबंध होना चाहिए। इस संदर्भ में यह ध्यान रखा जाए कि पुरुष को मिलने वाली शिक्षा-सुविधा की तुलना में नारी घाटे में न रहे। उसे अपेक्षाकृत अधिक लाभ उसी प्रकार मिलना चाहिए, जिस प्रकार बीमारी से उठे दुर्बल व्यक्ति को घर के अन्य लोगों की तुलना

में कुछ अधिक पौष्टिक आहार दिया जाता है। क्षतिपूर्ति की दृष्टि से इस प्रकार की विशेष सुविधा का मिलना—विवेकपूर्ण भी है और न्यायोचित भी।

आर्थिक स्वावलंबन की क्षमता का होना नर और नारी दोनों के लिए आवश्यक है। आज की अर्थ-व्यवस्था में दोनों पक्षों में उपार्जन योग्यता का होना आवश्यक है। कोई समय था जब एक कमाता था और पूरा घर खाता था, अब वैसी स्थिति नहीं रही। निर्वाह इतना महँगा हो गया है कि गाड़ी के दोनों पहियों पर ही यह अर्थ-संकट आगे चल सकता है। यदि वैसी आवश्यकता न भी पड़े, तो भी समय कुसमय के लिए इस दिशा में निश्चितता का बना रहना आवश्यक है। किसी भी परिवार पर आकस्मिक विपत्ति की तरह अर्थ-संकट आ सकता है। दुर्भाग्य और दुर्घटना—किस पर, कब, किस रूप में बरस पड़े, इसका कोई ठिकाना नहीं। ऐसे क्षणों में आर्थिक-स्वावलंबन की समर्थता का संचित रहना अत्यधिक आवश्यक है। पांडव वनवास में थे तो द्रोपदी सहित उन छहों ने अपनी-अपनी पूर्व संचित उपार्जन योग्यताओं के सहारे निर्वाह के लिए आश्रय-स्थल प्राप्त कर लिए थे। यदि वे लोग वैसा कुछ न जानते रहे होते तो अज्ञातवास की अवधि कितनी जटिल और कठिन होती—इसकी आज तो कल्पना कर सकना भी कठिन है। गृह उद्योगों के रूप में नारी का अर्थ-स्वावलंबन सरल है। इससे न केवल पैसा मिलता है, वरन् सृजनात्मक प्रवृत्तियाँ जागृत होती हैं और शारीरिक, मानसिक कुशलता की बढ़ोत्तरी होते चलने में प्रगति के नए-नए द्वार खुलते हैं।

नारी का पिछड़ापन दूर करने के लिए उसके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ बंद की जानी चाहिए। दांपत्य-प्रेम की सघनता में कामुकता का अति न्यून स्थान है। इस दिशा में अत्युत्साह बरतने से नर का भी स्वास्थ्य नष्ट होता है, पर नारी का तो सर्वनाश ही हो जाता है। प्रजनन अति और भोग का दुष्परिणाम नारी के स्वास्थ्य की बर्बादी के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता। नारी के पिछड़ेपन को दूर करने के लिए उसे इस प्रकार की विवशता के लिए बाधित करने वाली निष्पुरुता का भी अंत होना चाहिए। दांपत्य प्रेम को उदात्त आत्मीयता का खाद-पानी मिलना

चाहिए। यौनाचार का अत्युत्साह इस कल्प तरु को नष्ट करने में विषय-सिंचन की तरह विघातक ही सिद्ध होता है।

नारी का पिछड़ापन दूर करने के लिए उस पर पड़ने वाले अवांछनीय दबावों का अंत होना चाहिए और प्रगति के वे साधन जुटाए जाने चाहिए, जिनके सहारे वह शिक्षा स्वावलंबन, स्वास्थ्य की दृष्टि से विकसित और आत्म-गौरव एवं आत्म-विश्वास की दृष्टि से परिष्कृत अपने-आपको अनुभव कर सकें। इस दिशा में किए गए प्रयास न केवल नारी को हेय स्थिति से ऊँची उठा सकेंगे, वरन् उसकी सुखद प्रतिक्रिया के रूप में संपूर्ण मनुष्य जाति को लाभ मिलेगा। परिवार-संस्था का सुसंचालन, भावी पीढ़ियों में प्रखरता का समावेश, आधे लोगों के परावलंबन भार से दबे हुए पुरुषवर्ग को राहत, नई प्रतिभाओं का सृजन क्षेत्र में अवतरण, हर क्षेत्र में संपत्ति का अभिवर्धन, सामाजिक-न्याय का पुनर्जीवन जैसे अनेकानेक लाभ हैं, जिन्हें नारी का पिछड़ापन दूर करके ही प्राप्त किया जा सकता है।

काका कालेलकर एक मनीषी, समाजसेवी एवं विचारक के रूप में प्रसिद्ध हैं। पिछड़े वर्ग के संबंध में विचार हेतु केंद्र द्वारा गठित समिति के वे अध्यक्ष हैं। नारी का पिछड़ापन दूर करने के संबंध में काका कालेलकर ने ये विचार व्यक्त किए हैं—

‘मैंने कुछ सुझाव पेश किए हैं—पिछड़े और न पिछड़े की पहिचान के लिए कुछ सिद्धांत बनाए हैं। उसमें भी मैंने बताया है कि नारी जाति को पिछड़ा वर्ग समझना चाहिए और उसमें से जिनकी माली हालत खराब है, उन्हें खास मदद देनी चाहिए।

भारत सरकार ने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया है कि हमने स्त्री जाति को पिछड़े वर्ग में शुमार किया है। यह तो ठीक लेकिन मेरे परिचय की दो महिलाओं ने जो मेरे लिए दो लड़की के समान है मेरे पास शिकायत की है कि ‘काका साहब, आपने हम लोगों को पिछड़े वर्ग में शुमार किया। लोगों में हमारी हँसी होती है।’ एक ने कहा कि ‘अच्छा, पिछड़े वर्ग में शुमार होकर, हमें अच्छी मदद मिले तो गनीमत।’

जब स्त्री जाति का विचार करता हूँ, तब औरों की तरह मेरे मन में केवल मध्यम वर्ग की महिलाएँ नहीं आती, जिनकी माली हालत अच्छी है। जो पढ़ी-लिखी भी है। अपने बच्चों को अच्छे

संस्कार देती हैं। बड़ी खुशी से अपने-अपने घर चलाती हैं और सभाओं की शोभा बढ़ाती हैं। ऐसों की संख्या है कितनी और क्या इस छोटे-से वर्ग में भी कुछ न कुछ पिछड़ापन नहीं है। पार्लियामेंट में ही देखिए। जहाँ प्रजा के सात-आठ सौ नुमाइंदें बैठते हैं, वहाँ स्त्रियों की संख्या कितनी है ? लोक संख्या के अनुपात से देखा जाए तो स्त्रियों की संख्या कम से कम आधी होनी चाहिए। आज उनकी संख्या दस फीसदी की भी नहीं है।

हरिजनों की पिछड़ी जाति कहते वक्त हम जानते हैं कि उनकी जाति में भी बड़े-बड़े संत हुए हैं और आज राष्ट्र नेता उस जाति में है। मुट्ठी भर लोगों की प्रगति पर से हम किसी जाति को उन्नत जाति नहीं कह सकते।

भारत की जनगणना की पचास साल की रिपोर्ट देख लीजिए और शिक्षा का प्रसार पुरुषों में कितना है और स्त्रियों में कितना है इसे देख लीजिए। घर चलाना, मजदूरी करना, बीमारों की सेवा करना और गाना-बजाना इतनी बातों में स्त्रियाँ पुरुषों की बराबरी कर सकती हैं। लेकिन इसमें भी स्त्री जाति अगर पिछड़ी हुई नहीं होती तो समान काम के लिए, उन्हें पुरुषों से कम स्वीकृति क्यों मिलती है ? घर के कर्त्ता पुरुष के मर जाने पर उसकी विधवा की और घर की दूसरी स्त्रियों की हालत कैसी होती है, इसका ख्याल अगर किया जाए तो स्त्रियों का पिछड़ापन सिद्ध करने के लिए दूसरा सबूत नहीं देना पड़ेगा।

जिन जातियों का पिछड़ापन सब लोगों ने मान्य किया है, उनकी स्त्रियाँ पिछड़ी हुई ही हैं। लेकिन जो जातियाँ पिछड़ी हुई नहीं हैं, उनमें भी स्त्रियों की हालत स्त्री होने के कारण ही बहुत बुरी होती है।

दर्द की बात यह है कि उच्च वर्ण की स्त्रियाँ जब स्त्रियों की बात सोचती हैं, तब अपने वर्ग के बाहर की स्त्रियों की सोचती ही नहीं।

कुदरत ने ही जिनको अलग जाति का बनाया, उनका एक जाति होना स्वयं सिद्ध है। अगर सारी स्त्री जाति का एक होना हम मंजूर करें तो हम कैसे कह सकते हैं कि यह जाति पिछड़ी हुई नहीं है।

संस्कृत नाटकों में देखिए। राजा, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि सब संस्कारी लोग संस्कृत में बोलते हैं। शूद्र, धीवर, शिकारी आदि पिछड़ी हुई जातियाँ और स्त्री जाति प्राकृत बोलती हैं। फिर वह सीता या शकुंतला ही क्यों न हों।

वेदों में और उपनिषद् काल में स्त्रियाँ पिछड़ी हुई नहीं थीं, वे संस्कृत में ही बोलती थीं।

हमारी प्रार्थना इतनी ही है कि सारे देश में स्त्रियों की हालत जल्दी से जल्दी सुधारने की आवश्यकता है। राष्ट्र की शक्ति को बढ़ाने न देना यह कोई बुद्धिमानी का लक्षण नहीं है। हरिजन, गिरिजन के साथ स्त्रीजन का सवाल भी राष्ट्रीय सवाल बनाकर, उसका हल राष्ट्रीय पैमाने पर करना चाहिए।

पढी-लिखी और संस्कारी स्त्रियों को चाहिए कि वे अपने को विराट स्त्री समाज से अलग न मानकर, अलग न रहकर, सबकी उन्नति के लिए कोशिश करें और उनका कोई हितचिंतक स्त्री जाति को पिछड़ी जातियों में सम्मिलित करें तो उसका बुरा न मानें।

परिस्थिति की कठोर परीक्षा में से निकला हुआ एक वर्ग हमारे बीच रहता है। आज लोग उसे 'अबला' के नाम से पहचानते हैं। लेकिन एक समय ऐसा जरूर आने वाला है, जब संसार को यह महसूस हुए बिना नहीं रहेगा कि आज की अबला भविष्य काल की शक्ति स्वरूपिणी है। उसने आज तक कुछ तकलीफें सहकर, सहानुभूति पाई है, जीवन-कलह से कुछ हद तक मुक्त रहकर, उसने कोमल भावनाओं का विकास कर लिया है। 'नम्र बनकर साम्राज्य भोगने की कला' उसको साध्य हुई है। भविष्य काल जरूर उसी का है।

किंतु स्त्रियों की तपश्चर्या अभी अपूर्ण है। उनकी दृष्टि संकुचित है। प्रेम संबंध का क्षेत्र भी संकुचित है। कुछ हद तक जीवन पराधीन और अति सहने की वजह से उनकी वृत्तियाँ कुछ विकृत भी हुई हैं। इस हकीकत की ओर हमें आँखें नहीं मूँदना है। माता की हैसियत से उनका स्थान शिक्षिकाओं के समान है। लेकिन इस स्थान में वे अभी तक अधिक चमकती हुई नहीं दिखाई दे रही हैं। भगिनी की हैसियत से पुरुषों में कोमल तेजस्विता और पवित्र निष्ठा पैदा करने का काम उन्होंने अब तक हाथ में नहीं लिया है।

स्त्री की हैसियत से सहधर्मिणी के स्थान पर वे अभी तक विराजमान नहीं हुई हैं और कन्या की हैसियत से उनके द्वारा परम-मंगला, चिति स्वरूपिणी आदि शक्ति का भी दर्शन हमें नहीं हो रहा है।

यह सब करने के लिए उन्हें नई दीक्षा लेनी चाहिए वह खुद दीक्षा लें और संसार को शीतल त्याग का उत्साह युक्त आत्म-बलिदान का पाठ दें। भविष्य काल उन्हीं का है।

वेदांत कहता है कि स्त्री-पुरुष दोनों के हृदय में एक ही आत्मा का वास है। आत्मिक दृष्टि से देखा जाए तो दोनों में तनिक भी भेद नहीं है। हृदय की दृष्टि से भावनाओं को उत्कृष्टता की दृष्टि से देखा जाए तो स्त्रियों का विकास पुरुषों की अपेक्षा अधिक हुआ है।

मानव कल्याण के चिंतन की दृष्टि से दोनों के बीच हम तुलना नहीं कर सकते। इसलिए कि व्यापक दृष्टि से सोचने का मौका ही स्त्री जाति को कम मिला है। लेकिन जब-जब मौका मिला है, तब स्त्री जाति ने सर्वहित की दृष्टि ही प्रधान रखी है।

भारत का पिछले सौ वर्ष का इतिहास हम देखें तो जातिवाद और संप्रदायवाद का जहर स्त्रियों में कम पाया गया है। कुछ भी हो, हमारे राष्ट्र ने अब निश्चय किया है कि स्त्री और पुरुष का दर्जा हर बात में समान होना चाहिए।

इसलिए समाज में स्त्रियों का अधिकार पुरुषों से तनिक भी कम नहीं होना चाहिए। अगर भेद करना ही है तो स्त्रियों को हम कुछ ज्यादा अधिकार दे सकते हैं, क्योंकि मानवता का द्रोह पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों ने कम किया है।

स्त्रियों की जो कमजोरियाँ बताई जाती हैं, वे सही भी हों तब भी विकास के लिए पूरा अवकाश मिलते ही वे आसानी से दूर हो जाएँगी। स्त्रियों के जो दोष या कमजोरियाँ बताई जाती हैं, उनमें एक भी स्वभावगत नहीं है। परिस्थिति के कारण ही वे दोष आते हैं और ऐसे दोष वैसी ही परिस्थितियों में पुरुषों से कम नहीं आते।

जब-जब जिन समाजों में नारी का समुचित स्थान रहा है, उसके शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आत्मिक विकास की व्यवस्था रखी गई है, तब-तब वे समाज, संसार में समुन्नत होकर

आगे बढ़े हैं और जब-जब इसके प्रतिकूल आचरण किया गया है, तब-तब समाजों का पतन हुआ है।

नारी जन्मदात्री है। समाज का प्रत्येक भावी सदस्य उसकी गोद में पलकर संसार में खड़ा होता है। उसके स्तन का अमृत पीकर पुष्ट होता है। उसकी हँसी से हँसना और उसकी वाणी से बोलना सीखता है। उसकी कृपा से ही जीकर और उसके ही अच्छे-बुरे संस्कार लेकर अपने जीवन क्षेत्र में उतरता है। तात्पर्य यह है कि जैसी माँ होगी—संतान अधिकांशतः उसी प्रकार की होगी।

भारत के अतीत कालीन गौरव में नारियों का बहुत कुछ अंशदान रहा है। उसी समय संतान की अच्छाई-बुराई का संबंध माँ की मर्यादा के साथ जुड़ा था। वह अपनी मान-मर्यादा की प्रतिष्ठा के लिए संतान को बड़े उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से पालती थी। देश, काल और समाज की आवश्यकता के अनुरूप संतान देना अपना परम-पावन कर्तव्य समझती थी। यही कारण है कि जब-जब युगानुसार संत, महात्मा, त्यागी, दानी, योद्धा वीर और बलिदानियों की आवश्यकता पड़ी, उसने अपनी गोद में पाल-पालकर दिए।

किंतु वह अपने इस दायित्व को निभा तब ही सकी हैं, जब उसको स्वयं का विकास करने का अवसर दिया गया है। जिस माँ का स्वयं अपना विकास न हुआ हो, वह भला विकासशील संतान दे भी कैसे सकती है ? जिसको देशकाल की आवश्यकता और समाज की स्थिति और संसार की गतिविधि का ज्ञान ही न हो, वह उसके अनुसार अपनी संतान को किस प्रकार बना सकती है ? अपने इस दायित्व को ठीक प्रकार से निभा सकने के लिए आवश्यक है कि नारी को सारे शैक्षणिक एवं सामाजिक अधिकार समुचित रूप से दिए जाएँ।

प्राचीनकाल से नारी को ये अधिकार मिले हुए थे। उनके लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था थी, समाज में आने-जाने और उसकी गतिविधियों में भाग लेने की पूरी स्वतंत्रता थी। वे पुरुषों के साथ वेद पढ़ती-पढ़ाती थीं, यज्ञ भी होता, ऋत्विज तथा यजमान के रूप में बैठती थीं और धर्म-कर्मों में हाथ बँटाती हुई तत्त्व-दर्शन किया करती थीं। यही कारण था कि वे गुण, कर्म, स्वभाव में पुरुषों के समान ही उन्नत हुआ करती थीं और तभी समान एवं समकक्ष स्त्री-पुरुष की

सम्मिलित संतान भी उन्हीं की तरह गुणवती होती थी। जब तक समाज में इस प्रकार की मंगल परंपरा चलती रही। भारत का वह समय देवयुग के समान सुख-शांति और संपन्नतापूर्ण बना रहा किंतु ज्यों ही इस पुण्य-परंपरा में व्यवधान आया, नारी को उसके समुचित एवं आवश्यक अधिकारों से वंचित किया गया। भारतीय समाज का पतन होना प्रारंभ हो गया और ज्यों-ज्यों नारी को दयनीय बनाया जाता रहा, समाज अधोगति को प्राप्त होता गया और अंत में एक ऐसा अंधकार युग आया कि भारत का सारा गौरव और उसकी सारी सांस्कृतिक गरिमा मिट्टी में मिल गई।

हमारे समाज में आज एक लंबे युग से नारी की उपेक्षा होती चली आ रही है। जिसके फलस्वरूप धर्म भार्या के रूप में उसके सारे गुण और समाज-निर्मात्री के रूप में सारी योग्यताएँ समाप्त हो गई हैं। उसे पैर की जूती बनाकर रखा जाने लगा, जिससे वास्तव में जूती से अधिक उसकी कोई उपयोगिता रह भी नहीं गई है। ऐसी निम्नकोटि में पहुँचाई गई नारी से यदि आज का स्वार्थी एवं अनुदार पुरुष यह आशा करे कि वह गृहलक्ष्मी बनकर उसके घर को सुख-शांतिपूर्ण स्वर्ग का एक कोना बना दे, उनकी संतानों को सुयोग्य-सुशील और नागरिक के रूप में रचना कर दे तो वह दिन में सपने देखता है, आकाश कुसुम की कामना करता है।

यदि मनुष्य सच्ची सुख-शांति चाहता है और चाहता है कि उसकी नारी अन्नपूर्णा बनकर उसकी कमाई में प्रकांडता भरे, उसके मन को माधुर्य और प्राणों को प्रसन्नता दे, उसके परिश्रान्त जीवन में सुमन बनकर हँसे और संसार-समर में शक्ति बनकर साहस दे तो उसे पैरों से उठाकर अर्धांग में सम्मान देना ही होगा। अन्यथा टूटे पहिए की गाड़ी के समान, उनकी जिंदगी घचके खाते ही घिसटेंगी। घर-बार बेकार का बोझ बनकर त्रस्त करता रहेगा। अयोग्य एवं अनाचारी बच्चों की भीड़ दुश्मन की तरह उसके पीछे पड़ी रहेगी।

इस प्रकार देश, समाज, घर-गृहस्थी तथा वैयक्तिक विकास तथा सुख-शांति के लिए नारी की इतनी आवश्यकता जानकर भी, जो उसे अधिकारहीन करके, पैर की जूती बनाए रखने की सोचता है वह देश, समाज का ही नहीं, अपनी आत्मा का भी हितैषी नहीं कहा जा सकता।

अपने राष्ट्र का मंगल, समाज का कल्याण और अपना वैयक्तिक अहित ध्यान में रखते हुए नारी को अज्ञान के अंधकार से निकालकर प्रकाश में लाना होगा। चेतना देने के लिए, उसे शिक्षित करना होगा। सामाजिक एवं नागरिक प्रबोध के लिए उसके प्रतिबंध हटाने होंगे और भारत की भावी संतान के लिए उसे ठीक-ठीक जननी का आदर देना ही होगा। समाज के सर्वांगीण विकास और राष्ट्र की समुन्नति के लिए यह एक सबसे सरल सुलभ और समुचित उपाय है, जिसे घर-घर में प्रत्येक भारतवासी को काम में लाकर अपना कर्तव्य पूर्ण करना चाहिए। यही आज की सबसे बड़ी सभ्यता सामाजिकता, नागरिकता और मानवता है। वैसे घर में नारी के प्रति संकीर्ण होकर यदि कोई बाहर समाज में उदारता और मानवता का दर्शन करता है तो वह दंभी और मिथ्याचारी है।

नारी केवल संतान संपादिका ही नहीं, पालिका तथा संचालक भी है। संसार का प्रत्येक प्राणी माँ के गर्भ से जन्म लेता है, उसकी गोद में पलता और उसका ही स्वभाव संस्कार लेकर बढ़ता है। समाज का प्रत्येक सदस्य माँ के दिए मूल संस्कारों को विकसित करता हुआ व्यवहार किया करता है और माँ अपने वहीं संस्कार तो संतान को दे सकती है, जो उसके पास होंगे। शुभ-संस्कारों वाली माँ, शुभ और अशुभ संस्कारों वाली माँ अशुभ संस्कार ही तो दे सकेगी। यह बात उसके वश की नहीं कि स्वयं और असंस्कृत होकर, अपनी संतानों को सुसंस्कृत बना सके।

पुरुष उद्योगी तथा उच्छृंखल इकाई है। परिवार बसाकर रहना उसका सहज स्वभाव नहीं है। यह नारी की ही कोमल कुशलता है, जो उसे पारिवारिक बनाकर प्रसन्नता की परिधि में परिभ्रमण करने के लिए लालायित बनाए रखती है। नारी ही पुरुष को उद्योग उपलब्धियों की व्यवस्था एवं उपयोगिता प्रदान करती है। पुरुष नारी के कारण ही पुत्रवान है, पारिवारिक है और प्रसन्नचेता है। पत्नी के रूप में नारी का महत्त्व असीम है अनुपम है।

पारिवारिकता ही नहीं, सामाजिकता में भी नारी का महत्त्व महान है। समाज केवल पुरुष वर्ग से ही नहीं बना वह स्त्री-पुरुष दोनों से ही बनता है। आज समाज से यदि नारी अपने आपको दूर कर ले अथवा अपने को निकाल ले तो क्या समाज का रथ केवल

पुरुष रूपी एक पहिए पर एक दिन भी चल सकता है ? नारी समाज की आधी जनसंख्या है। समाज के बहुत-से ऐसे काम हैं, जो नारी द्वारा ही किए जाते हैं। सदस्य जिनसे मिलकर समाज बनता है नारी है, जननी है और वही उनका लालन-पालन करती है। नारी समाज की आधी शक्ति है। 'एकोहं बहुस्यामि' के सिद्धांत पर समाज की जनसंख्या का सृजन नारी करती है, नारी ही अपनी योग्यता, दक्षता एवं कुशलता के अनुसार समाज को अच्छे-बुरे सदस्य और राष्ट्र को नागरिक देती है। अपने गुण एवं स्वभाव के अनुसार अपनी संतानों को ढाल-ढालकर देश व राष्ट्र को देना नारी का काम है। देश के निवासी शूरवीर त्यागी, बलिदानी अथवा कायर, कुटिल और आचरणहीन बनते हैं, यह जननी की ही गौरव-गरिमा पर निर्भर है। सारांश यह है कि जिस प्रकार की राष्ट्र की जननी नारी होगी, राष्ट्र भी उसी प्रकार का बनेगा। सामाजिकता अथवा राष्ट्रीयता के रूप में नारी का यह महत्त्व सर्वमान्य ही मानना पड़ेगा।

धार्मिक क्षेत्र में भी नारी का महत्त्व अप्रतिम है। विद्या, वैभव और वीरता की अधिष्ठात्री देवियाँ शारदा, श्री और शक्ति नारी की प्रतीक हैं। सृष्टिकर्ता परमात्मा की स्फुरण शक्ति माया भी नारी मानी गई है। इसके अतिरिक्त यज्ञादि जितने भी धार्मिक अनुष्ठान पुरुष द्वारा संपन्न किए जाते हैं वे नारी को साथ लेकर पूर्ण किए जाते हैं। यह बात सही है कि आज यद्यपि उनमें रूढ़िता, अंधविश्वास तथा अज्ञान का दोष अवश्य आ गया है, तथापि नारियाँ पुरुषों की अपेक्षा धर्म को अधिक दृढ़ता के साथ पकड़े हुए हैं। यही नहीं अनेक बार अंधकार युगी में जबकि आक्रांत अथवा सक्रांत समय में पुरुष वर्ग धर्म तथा आस्तिकता से विचलित होने लगे हैं। नारियाँ ने धर्म-भावना की रक्षा की है और घरों में चोरी छिपे, सही-गलत, उल्टे-सीधे धार्मिक कृत्य, व्रत-उपवास और पूजा के रूप में करती रही हैं। समय-समय पर धर्म रक्षार्थ उन्होंने अपने प्राण दे दिए हैं। आज के इस विकृतकाल में भी नारियाँ धर्म-धारण में पुरुषों से आगे ही हैं। पुरुष के नास्तिक हो जाने अथवा धर्म के प्रति अविश्वासी होकर भी नारियाँ बहुधा घरों में आस्तिकता तथा श्रद्धा-विश्वास का वातावरण बनाए रखती हैं। आज भी कुप्रगतिशीलता की लहर से अप्रभावित रहकर, करोड़ों

नारियाँ एक प्रकार से बहुत अंशों तक भारतीय धर्म तथा सभ्यता एवं संस्कृति की संरक्षिका बनी हुई हैं। धार्मिक क्षेत्र में यह महत्त्व की बात रही है।

आज हमारे समाज में अशिक्षा का अभिशाप नारी वर्ग को सर्प की तरह डसे हुए है। शिक्षा के अभाव में भारतीय नारी असभ्य, अदक्ष, अयोग्य एवं अप्रगतिशील बनी हुई है। चेतन होते हुए भी जड़ की तरह जीवन बिता रही है। समाज एवं राष्ट्र के लिए उसकी सारी उपादेयता नष्ट होती जा रही है। आज वह आत्मबोध से वंचित आजीवन वंदिनी की तरह घर में बंद रहती हुई चूल्हे-चौके तक सीमित पुरुषों की संकीर्णता का दंड भोगती हुई मिटती चली जा रही है। उसे समाज एवं राष्ट्र की गतिविधियों में हाथ बँटाना तो दूर रहा उसको ज्ञान का भी अवसर नहीं मिलता।

गृहिणी होते हुए भी अशिक्षा के कारण नारी ठीक मानों में गृहिणी सिद्ध नहीं हो पा रही हैं, बच्चों के लालन-पालन से लेकर घर की संभाल तक किसी काल में भी कुशल न होने से उस सुख-सुविधा को जन्म नहीं दे पाती, घर में जिसकी अपेक्षा की जाती है। घर को सजा-सँवारकर रखना तो दूर उसकी अदक्षता उसे और भी अस्त-व्यस्त बनाए रहती है। शिक्षा के अभाव में कोमलवृत्ति नारी-कर्कशा एवं कलहनी होती चली जा रही है। हर समय कोप करना, बात-बात पर बच्चों को मारना-पीटना, अकारण में कारण निकालकर लड़ना-झगड़ना और खाटपाट ले लेना, उसके स्वभाव का अंग बन गया है। वह परावलंबनी और परमुखोपेक्षिणी बनी हुई विकास से वंचित, शिक्षा से रहित गूढ़-मूढ़ और मूक जीवन बिताती हुई अनागरिक पशु की भाँति परिवार को ढोए जा रही है, पुरुष उसे स्वतंत्रता, दे और समाज-सुविधाएँ—फिर देखो आज की यह फूहड़ नारी कुशल शिल्पी की भाँति संतान, घर और समाज को रच देती है या नहीं।



परिवार निर्माण की धुरी—नारी

स्त्री को परिवार का हृदय और प्राण कहा जा सकता है। परिवार का संपूर्ण अस्तित्व तथा वातावरण गृहिणी पर निर्भर करता है। यदि स्त्री न होती तो पुरुष को परिवार बनाने की आवश्यकता न रहती और न इतना क्रियाशील तथा उत्तरदायी बनने की। स्त्री का पुरुष से युग्म बनते ही परिवार की आधारशिला रख दी जाती है और उसे अच्छा या बुरा बनाने की प्रक्रिया भी आरंभ हो जाती है।

परिवार बसाने के लिए अकेला पुरुष भी असमर्थ है और अकेली स्त्री भी। पर मुख्य भूमिका किसकी है, यह तय करना हो तो स्त्री पर ही ध्यान केंद्रित हो जाता है, क्योंकि अंदरूनी व्यवस्था से लेकर परिवार में सुख-शांति और सौमनस्य के वातावरण का दायित्व प्रायः स्त्री को ही निभाना पड़ता है। इसलिए स्त्री के साथ गृहिणी, सुगृहिणी, गृह-लक्ष्मी जैसे संबोधन जोड़े गए हैं। पुरुष के लिए ऐसी कोई विशेषता नहीं मिलती।

यहाँ गृहिणी से तात्पर्य केवल पत्नी से ही नहीं है। स्त्री चाहे जिस रूप में हों, वह जिस परिवार में रहती है, वहाँ के वातावरण को अवश्य प्रभावित करती है। माता, पत्नी, बहिन, बुआ, चाची, ताई, दादी, ननद, देवरानी, जेठानी, भाभी आदि सभी परिवार के निर्माण में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं और वहाँ के वातावरण को, उस घर के सदस्यों को प्रभावित करती है, कारण कि पुरुष तो अधिकांशतः बाहर रहते हैं, वृद्ध या असमर्थ पुरुष घर में रहते भी हों तो वे स्त्री की तरह वहाँ के वातावरण को प्रभावित नहीं करते, क्योंकि स्त्री में कोमलता, संवेदना, करुणा, स्नेह और ममता की जो हार्दिक विशेषताएँ होती हैं, वे पुरुषों में नहीं होती। इन विशेषताओं के कारण ही महिलाएँ घर के सदस्यों के अधिक निकट रहती और उन्हें प्रभावित करती हैं।

पुरुष या पिता में एक वारगी कोई दुर्गुण भी हो, तो भी माँ अपनी संतान को उससे बचा सकती है। शिवाजी के पिता-मुसलमान

राजा के दरबार में नौकरी करते थे और उनकी अधीनता को मानते थे। पर जीजाबाई अपने पुत्र को स्वातंत्र्य योद्धा के रूप में ही विकसित करना चाहती थीं। इसके लिए उन्होंने आवश्यक सभी सतर्कताएँ बरतीं। अपने पति के प्रभाव से बचाया और शिवाजी को उसी ढाँचे में ढाला। आश्चर्यजनक हो सकता है, यह कि पिता जिसके प्रति कृतज्ञ हों, जिसकी रोटी खाते हों और यह भी चाहते हों कि पुत्र भी उन्हीं की तरह निकले तथा पुत्र विपरीत दिशा में ही विकसित हो, अलग ही मनोभूमि रखने वाला बन जाए। लेकिन माँ के महत्त्व को देखते हुए यह अस्वाभाविक नहीं है। सामान्य जन-जीवन में भी अयोग्य और दुर्व्यसनी पिता की संतानें योग्य तथा सच्चरित्र बन जाती हैं। इसका कारण यही है कि वहाँ माताएँ दोष-दुर्गुणों से होते रहने वाले कट्टु अनुभवों की पुनरावृत्ति संतान में न आने देने के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील रहती हैं। यह भी देखा जाता है कि ईमानदार, विश्वासपात्र और सच्चरित्र व्यक्तियों की संतानें कभी बेईमान, धोखेबाज और चरित्रहीन निकल जाती हैं। यह भी इसलिए कि संतानें तथा परिवार में रहने वाली स्त्रियाँ बच्चों के प्रति विशेष रूप से सावधानियाँ नहीं रखतीं तथा कई भूलें और त्रुटियाँ कर डालती हैं।

संतान के निर्माण में ही नहीं, परिवार के समूचे निर्माण में भी पुरुष की अपेक्षा नारी की भूमिका हजार गुनी अधिक महत्त्वपूर्ण और अधिक प्रभावशाली है। इसलिए स्वामी दयानंद ने कहा—“एक पुरुष के शिक्षित और सुसंस्कारी होने का अर्थ है, अकेले उसी का उपयोगी बनना और एक माँ यदि शिक्षित, समझदार तथा सुयोग्य हो तो समझना चाहिए पूरा परिवार आदर्श रत्न बन गया, नर-रत्नों की खदान निकल आई।” लेकिन हमारे देश में अभी वह सौभाग्य-सूचक स्थिति नहीं आ पाई है, जिसमें कि सभी नर-रत्न हो सकें। किसी समय में भारत में ३३ करोड़ नर-रत्न रहे होंगे, जिन्हें तैतीस कोटि देवताओं के नाम से पुकारा जाता था, पर अब वह बात पुराण कल्पना ही लगती है। ऐसा लगना स्वाभाविक भी है, क्योंकि भारतीय समाज का अध्ययन करते समय नारी का जो रूप उभरकर सामने आता है, उसे देखकर विश्वास नहीं होता की कभी वह नर-नारायण की जननी रही होगी।

इसलिए परिवार निर्माण के महान उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए नारी को अपनी योग्यता, शारीरिक एवं मानसिक क्षमता विकसित करनी चाहिए। शारीरिक दृष्टि से रुग्णा, कमजोर तथा मानसिक दृष्टि से अविकसित स्त्रियाँ अपना तो निर्माण कहाँ से करेंगी?।

शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ एवं निरोग बनने के लिए प्रकृति के नियमों का पालन नितांत आवश्यक है। प्रकृति बड़ी कठोर है और वह किसी के द्वारा भी नियम का उल्लंघन सहन नहीं करती। जो भी उपेक्षा करेगा, उसे रोग और दुर्बलता का दंड भुगतना ही पड़ेगा। स्वास्थ्य को बिगाड़ने वाली आदत से सभी परिचित हैं, उन्हें छोड़ दिया जाए और संयमित, नियमित तथा व्यवस्थित जीवन जिया जाए तो प्रकृति के उपहार—स्वास्थ्य और शक्ति आसानी से प्राप्त किए जा सकते हैं।

माताएँ स्वयं प्राकृतिक नियमों का पालन करने लगे तो स्वयं उनका स्वास्थ्य तो ठीक रहेगा ही, घर के अन्य सदस्यों को भी इससे प्रेरणा मिलती रहेगी और वे भी उन नियमों का पालन करने लगेंगे। अन्यथा स्वयं नियमों का उल्लंघन करते रहा जाए और घर के अन्य सदस्यों, बच्चों को नियम पालन के लिए कहा जाए, तो यह कभी भी नहीं हो सकता। स्वयं के लिए हो या दूसरों के लिए, घर में खाने के लिए चटपटी मिर्च-मसाले की तलाश, गली-सड़ी चीज बनाई जाएँ तो न स्वयं की स्वास्थ्य रक्षा हो सकती है और न घर के अन्य सदस्यों पर समझाने-बुझाने का प्रभाव पड़ता है।

शारीरिक विकास के लिए जहाँ प्रकृति के नियमों का पालन आवश्यक है, वहीं मानसिक विकास के लिए शिक्षा की आवश्यकता है। अच्छा तो यही है कि लड़कियों को आरंभ से ही पढ़ाया जाए, पर जिन महिलाओं को बचपन में ऐसी सुविधा नहीं मिली है, उन्हें अपने परिवार के सदस्यों से, शिक्षित स्वजनों से पढ़ना-लिखना, सीखना चाहिए। घर के जिम्मेदार सदस्यों को भी चाहिए कि वे वस्त्र, भोजन और आवास की तरह ही शिक्षा को प्राथमिक आवश्यकता मानें और घर की अशिक्षित महिलाओं के लिए ऐसी व्यवस्था करें। आभूषण, सौंदर्य प्रसाधन, शृंगार, फैशन, टीपटाप और मनोरंजन से अधिक

महत्त्व शिक्षा को दें। विद्या से बढ़कर कोई संपत्ति नहीं है और अज्ञान से बढ़कर दारिद्र्य नहीं।

शिक्षित महिलाएँ अपने परिवार की अशिक्षित महिलाओं का पढ़ा सकती हैं। आजकल कई समाजसेवी संस्थाएँ भी काम कर रही हैं, जो प्रौढ़-महिला-शिक्षा की व्यवस्था करती हैं, पास में वैसी कोई सुविधा हो तो उसका लाभ भी उठाया जाना चाहिए और शिक्षा की आवश्यकता को अविलंब पूरा करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।

शिक्षित महिलाएँ अपने अर्जित ज्ञान और विकसित क्षमता का लाभ पूरे परिवार को देती रह सकती हैं। अशिक्षित और निरक्षर स्त्रियों में ज्ञान और क्षमता जैसी चीज मिलना असंभव-सा ही है। उनका ज्ञान अपने आस-पास तक सीमित रहता है और योग्यता केवल चौके-चूल्हे में ही प्रयुक्त होती है। इसके विपरीत शिक्षित स्त्रियाँ अपनी नई-नई जानकारी का लाभ पूरे परिवार को देती रहती हैं। उन्हें बच्चों का पालन-पोषण ही नहीं, उसके विकास और निर्माण की कला भी आती है।

स्वास्थ्य और शिक्षावृद्धि के लिए स्वयं तथा परिवार को लक्ष्य रखकर किए जाने वाले प्रश्नों के अतिरिक्त एक तीसरा प्रयास और भी महत्वपूर्ण है, वह है घर की व्यवस्था तथा परिवार को सुसंस्कृत बनाने की चेष्टा। कहा जा चुका है कि ठोस प्रभाव कह-सुनकर नहीं, स्वयं के माध्यम से आदर्श प्रस्तुत कर ही उत्पन्न किए जा सकते हैं। प्रायः देखा जाता है कि घरों में स्वच्छता और सुरुचिपूर्ण सुसज्जा का बड़ा अभाव रहता है। स्वयं गृहिणी का इस ओर कोई ध्यान नहीं तो परिवार के अन्य सदस्य भी इस विषय में कोई ध्यान नहीं देते। घर में गंदगी देखकर बच्चे भी वहाँ और गंदगी बढ़ाने लगते हैं, घर की यह अस्त-व्यस्तता बताती है कि यहाँ आलस्य और प्रमाद का राज्य है। आलस्य और प्रमाद को मानव-जीवन का बहुत बड़ा दोष समझा गया है और उसका पहला परिचय गंदगी के रूप में मिलता है। इसलिए गृहिणी को स्वयं साफ-स्वच्छ रहने के साथ-साथ घरों में भी सुरुचि और सुसज्जा का वातावरण बनाना चाहिए एवं घर के अन्य लोगों में भी स्वच्छता के संस्कार डालने चाहिए।

गृहिणी को 'गृह लक्ष्मी' के सम्मानजनक विशेषण से संबोधित किया गया है जिसका अर्थ है—वह नैतिक दृष्टि से सुदृढ़ और

स्वभाव की दृष्टि से देवी है। मधुरता तथा सदभाव का अमृत उससे बहता रहता है, जिसके द्वारा वह घर के अशांत सदस्यों को धैर्य बँधाती, दिशा बताती और प्रेरणा देती है तथा परिवार-संस्था की नींव मजबूत बनाती है।

परिवार में सुख-शांति का आधार उसके सदस्यों में रहने वाला स्नेह-सहयोग और सदभाव है। घर में इसी से स्वर्गीय-वातावरण का सृजन होता है। इसलिए गृहिणी को इसके लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील रहना चाहिए। परिवार के सभी सदस्य एक-दूसरे की सुविधा का ध्यान रखें, परस्पर आदर-सम्मान करें, एक-दूसरे का सहयोग करें और स्नेह, सदभाव तथा आत्मीयता, उदारता भरें। इसके लिए प्रेरणाएँ भरने का काम भी स्त्री ही अधिक कुशलतापूर्वक कर सकती है।

स्वयं अपना व्यवहार भी उसी स्तर का रखना चाहिए तथा छोटों के प्रति असीम दुलार, स्नेह ममता तथा बड़ों के प्रति श्रद्धा और सम्मान बरतना चाहिए। इस तरह की प्रेरणाएँ भरने के लिए रात्रि में सोते समय पारिवारिक गोष्ठियाँ करने, बच्चों को प्रेरणाप्रद कथा-गाथाएँ सुनाने का काम भी बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

कई बार ऐसे प्रसंग आते हैं, जब घर के लोगों में आपस में ही एक-दूसरे के प्रति गुत्थियाँ और ग्रंथियाँ बन जाती हैं तथा मनमुटाव रहने लगता है। इन समस्याओं का समाधान और गुत्थियों का सुलझाव भी विवेक और समझदारी के साथ किया जा सकता है। पुरुष जिस तरह परिवार की भौतिक कठिनाइयाँ हल करता है, तत्संबंधी समस्याओं का समाधान करता है, उसी तरह गृहिणी को भी परिजनों की भावात्मक तथा विचारात्मक समस्याओं को हल करने का प्रयत्न करना चाहिए।

नारी पूरे परिवार के दोष-दुर्गुणों और बुराइयों के दुःखदायी प्रभाव अपने ऊपर सहन करती है। यह सहनशीलता स्तुत्य है पर इतना भर पर्याप्त नहीं है। उन्हें सहन करते रहना और उनके समाधान की कोई चेष्टा न करना—प्रच्छन्न रूप से दुर्गुणों को बढ़ावा देने जैसा है। यह तो ठीक है कि मनुष्य के स्वभाव में अच्छाइयाँ और बुराइयाँ दोनों ही भरी पड़ी हैं। उसमें देवोपम गुण हैं तो पशु तुल्य कुसंस्कारों की कमी भी नहीं। गौरवास्पद तो यही है कि

अच्छाइयों को उभार जाए और बुराइयों को दबाया या नष्ट किया जाए। पिछले कई जन्मों से पशु-योनियों में भटकते हुए, उसके संस्कार लेकर जन्मा मनुष्य, वह प्रभाव शीघ्र छोड़ देगा यह सरल नहीं है, पर नारी के लिए सरल हो सकता है, क्योंकि मनुष्य की नकेल उसके हाथ तभी आ जाती है, जबकि वह जन्म लेता है और वह उसी समय से आवश्यक सुविधा तथा सूझ-बूझ बरते तो मनुष्य को, परिवार की स्वामिनी होने के नाते घर के सदस्य को मनचाही शिक्षा दे सकती है। मनोवैज्ञानिकों के लिए स्वभाव परिष्कार भले ही कठिन हो, पर नारी के लिए, माँ के लिए वह नितांत सरल है। वह यह काम आसानी से कर सकती है और मनुष्य की निर्मात्री होने के कारण इसे करने में ही उसकी शान है।

परिवार संस्था को, व्यक्ति और समाज की मध्यवर्ती कड़ी कहा जा सकता है। परिवार का कलेवर छोटा-सा होता है—चर्म-चक्षुओं की आदत यह है कि वस्तु के आकार के अनुरूप उसका महत्त्व माना जाए। परिवार छोटी संस्था है, इसलिए उसे उपेक्षणीय समझा जाता है, पर यदि गंभीरतापूर्वक सोचा जाए तो प्रतीत होगा कि व्यक्ति और समाज की व्यवस्था एवं प्रगति की आधार भूमिका निभाने की पूरी जिम्मेदारी परिवार के स्तर पर ही निर्भर रहती है। अस्त-व्यस्त परिवारों में पले हुए लोगों का व्यक्तित्व कभी उच्च स्तर का नहीं हो सकता और न पिछड़े स्तर के लोग कभी प्रगतिशील, सुविकसित समाज की रचना कर सकते हैं। गरीबी एक बात है और संस्कृति दूसरी। गरीबी परिस्थितियों पर निर्भर है, पर संस्कृति को हर परिस्थिति में सुस्थिर रखा जा सकता है। पारिवारिक परंपराएँ यदि सद्भाव संपन्न हों, उनमें उच्चस्तरीय प्रचलन विद्यमान हो तो समूची मानवी जाति का, समस्त संसार का वातावरण सुख-शांति से भरा-पूरा रह सकता है और स्वल्प साधन रहते हुए भी स्वर्गीय परिस्थितियों का आनंद उपलब्ध हो सकता है।

दुर्भाग्य यह रहा है कि व्यक्ति-निर्माण के लिए धर्म और समाज निर्माण के लिए शासन जैसा समर्थ तंत्र परिवार संस्था को सुविकसित बनाए रहने के लिए खड़ा नहीं किया गया है। उसकी समस्याओं को सुलझाने के लिए—उसका परिष्कृत ढाँचा खड़ा करने के लिए सर्वांगपूर्ण आचार संहिता और विधि-व्यवस्था की आवश्यकता थी, पर वह व्यवस्था

लोगों के ध्यान में नहीं आई। होम साइन्स 'गृह-विज्ञान' के नाम से लड़कियों को स्कूलों में पुस्तकें तो कितनी ही पढ़ाई जाती हैं, पर उनमें काम-काजी, साज-सँभाल की ऊपरी जानकारियाँ भर होती हैं। परिवार के सदस्यों का भावना-स्तर चिंतन, दृष्टिकोण किस प्रकार परिष्कृत किया जाए, उनमें गुण, कर्म स्वभाव की उत्कृष्टता का विकास कैसे किया जाए ऐसे तथ्य नहीं ही दिखाई पड़ते हैं। सुसज्जित घर में रहने का आनंद तो अच्छे होटलों में रहकर भी उठाया जा सकता है। अमीर लोग वैसी सुविधा उपयुक्त सामग्री खरीदकर, प्रशिक्षित नौकर रखकर भी उपलब्ध कर सकते हैं। परिवार का बाह्य अंग ही उस सुव्यवस्था और सज्जा को माना जा सकता है, जो गृह-विज्ञान की पुस्तकों में लिखी मिलती है और स्कूलों में पढ़ाई जाती है। यहाँ अभाव उस तंत्र का बताया जा रहा है, जो परिवार के वातावरण को सुसंस्कृत बनाता और जिसमें पले हुए लोग संस्कारवान बनकर निकलते हैं। परस्पर सद्भाव बरतने और समाज में सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्धन करने वाले कुशल माली सिद्ध होते हैं।

आवश्यकता इस बात की है कि उपेक्षित परिवार संस्था को नए सिरे से गठित किया जाए और उसे अपनी द्विपक्षीय भूमिका का निर्वाह कर सकने की क्षमता से संपन्न बनाया जाए। इसलिए कितने ही नए आधार खड़े करने होंगे और अवांछनीय प्रचलनों से पीछा छुड़ाना पड़ेगा। मूलभूत आधार वे ही हो सकते हैं, जिनमें, न्याय, नीति, औचित्य और विवेक को समुचित प्रश्रय दिया गया हो, परंपराओं का महत्त्व इसलिए है कि वे स्वभाव का अंग बन जाती हैं। रुचि उसी में ढल जाती है और ढर्रा उसी पटरी पर लुढ़कने लगता है। मनःक्षेत्र में इन परंपराओं की जड़ें इतनी गहरी जमी रहती हैं कि निष्पक्ष दृष्टि से अवांछनीय सिद्ध होने पर भी पूर्वाग्रहों के पक्ष में प्रायः हठवादिता बनी रहती है और उनके पक्ष में विचित्र प्रकार के तर्क प्रस्तुत किए जाते रहते हैं। परिवर्तन के लिए रजामंद करना तो और भी कठिन पड़ता है।

जो हो, अवांछनीयताओं को निरस्त करके औचित्य का प्रतिष्ठापन नितांत आवश्यक है। यदि आत्म-हत्या के लिए कटिबद्ध मानव जाति को उज्ज्वल भविष्य के राजमार्ग पर घसीटना है तो कई महत्त्वपूर्ण कदम उठाने पड़ेंगे। व्यक्ति का नैतिक, बौद्धिक, चारित्रिक स्तर ऊँचा उठाना पड़ेगा और मानवी आदर्श एवं कर्तव्यों को अपनाने

के लिए राजी बे-राजी से रजामंद करना पड़ेगा। सामाजिक प्रचलनों में ऐसी मर्यादाएँ, प्रथाएँ तथा धाराएँ जोड़नी पड़ेंगी, जो समूहगत अवांछनीयताओं को निरस्त करके, निष्पक्ष न्याय को व्यवहार में ला सकने की परिस्थितियाँ बना सकें।

व्यक्ति और समाज की स्थिति उच्चस्तरीय बनाने का व्यावहारिक उपाय एक ही है कि परिवारों का पुनर्गठन किया जाए। इस गठन में भारी उथल-पुथल करने की जरूरत नहीं है और न प्रचलित परंपराओं को नष्ट करना ही अभीष्ट है। प्राचीन और नवीन को, प्रचलन को, औचित्य को परस्पर मिला देने की सुधार-प्रक्रिया अपनाकर भी अभीष्ट प्रयोजन पूरा किया जा सकता है। हमारे प्रयास इसी दिशा में हैं। परिवार संस्था की ओर लोक-चेतना को आकर्षित करके, जन-जन को यह समझाया जाना है कि परिवार छोटे होने पर भी वे उपेक्षणीय नहीं है। वे बहुत ही शक्तिशाली होते हैं और दूरगामी परिणाम उत्पन्न करते हैं। इसलिए उन्हें सुविकसित बनाने की दिशा में समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए। अन्यथा व्यक्ति और समाज की दुर्दशा दूर न हो सकेगी और आज जो समस्याएँ सर्वभक्षी विभीषिका बनकर रह रही है, उनका समाधान नहीं हो सकेगा।

युद्धों में रक्तपात को, क्रूर-कर्म कठोर प्रकृति के बने पुरुषों से ही सफलतापूर्वक संभव हो सकता है। नारी की करुणा इस दिशा में उसे बहुत आगे तक नहीं बढ़ने देती। यों प्रकारांतर अथवा आपत्ति धर्म के अनुरूप वे भी युद्ध में प्रवृत्त होती देखी गई हैं। परिवार का भावनात्मक क्षेत्र पूरी तरह नारी के अधिकार क्षेत्र में आता है। यों उसकी आर्थिक तथा नियामक प्रखरता का भार प्रायः पुरुष को ही सँभालना पड़ता है, पर जहाँ तक भावनात्मक बीजारोपण तथा उस फसल को उगाने, बढ़ाने और फली-फूली बनाने में नारी जो कर सकती है, वह नर के लिए किसी भी प्रकार संभव नहीं हो सकता। घर-परिवार नारी का प्रधान कार्यक्षेत्र है। नौकरी व्यवसाय आदि करना पड़े तो भी घर सँभालना उसी के जिम्मे रहता है। परिवार के छोटे-बड़े सदस्य बाहर कम और घर में अधिक समय तक रहते हैं। इस अवसर पर उन्हें तरह-तरह की सुविधा एवं व्यवस्था का लाभ महिलाएँ ही प्रदान करती हैं और प्रत्यक्ष-परोक्ष प्रभाव डालती हैं। धर्मोपदेशक की तरह तो नहीं, पर प्रकारांतर से वे समूचे परिवार को प्रभावित करती हैं। यदि उनका स्तर ऊँचा हो तो वे निर्धनता

जैसी कठिनाइयों के रहते हुए भी घर को देव मंदिर जैसी सुरुचिपूर्ण बना सकती हैं और अपने आंतरिक सौंदर्य से घर के हर सदस्य को मुग्ध करके, कठपुतली की तरह नचा सकती हैं। आदतें सुधारना, बदलना और आरंभ करना वस्तुतः घर की ढलाई भट्टी की सहायता से ही संभव हो सकता है। परिवार वह प्रयोगशाला है, जिसमें किए गए अनुसंधानों का लाभ समूचे समाज को मिलता है। यह वह नर्सरी है जिसमें उगाए हुए पौधे जहाँ-तहाँ सुरम्य उद्यान बनकर विकसित होते हैं और अपनी सुरम्य हरियाली तथा सुषमा से मनोरम वातावरण उत्पन्न करते हैं।

परिवार संस्था का आरंभ नारी के गृह प्रवेश के साथ होता है। एकांकी पुरुष दफ्तर में काम करके और सराय में सोकर भी गुजारा कर सकता है, पर घोंसला बनाने और अंडे-बच्चों को संभालने की बात नव-वधू के साथ ही जुड़ी आती है। सूक्तिकार की वह उक्ति अक्षरशः सही है, जिसमें कहा गया है कि—“न गृह गृह मिथ्याहु गृहिणी गृह मुच्यते” अर्थात् इमारत घर नहीं कहलाती वस्तुतः गृहिणी, घरवाली—ही घर है। गृहलक्ष्मी के प्रवेश से ही टूटे-पुराने घर झोंपड़े हास-उल्लास से भर जाते हैं और सृजन के बहुमुखी प्रयत्न एक निश्चित दिशा में चल पड़ते हैं। घर का आरंभ ही नारी नहीं करती वरन् उसका विस्तार, पोषण, विकास भी वही करती है, अब उसमें इतना और जोड़ना है कि परिवार को सुसंस्कृत, परिष्कृत और समुन्नत बनाने का ईश्वर प्रदत्त उत्तरदायित्व भी वही संभाले। उसका भावनात्मक ढाँचा इस प्रयोजन को भली प्रकार पूरा कर सकने के लिए सर्वथा उपयुक्त बनाया गया है।

इस दिशा में पहले कदम यह होना चाहिए कि गृहलक्ष्मी—गृह संचालिका इस योग्य बने कि वह अपनी प्रतिभा को उपयुक्त उत्तरदायित्व निबाहने में सक्षम सिद्ध कर सके। महिला जागरण का उद्देश्य ऐसे इंजिनियर तैयार करना है, जो नए समाज का—नया मवन बनाने में अपनी कुशलता सिद्ध कर सके। नारी जागरण के अन्य प्रयोजन भी हैं, प्रतिफल भी सबसे बड़ी उपलब्धि यही मिलती है कि उस परिवार संस्था में नव-जीवन भरा जा सकेगा और उस क्षेत्र में उगे हुए नर-रत्न, व्यक्ति और समाज-निर्माण की समस्त समस्याओं का सहज समाधान कर सकेंगे।



भारतीय नारी का उज्ज्वल भविष्य

भारतीय संस्कृति स्त्रियों के प्रति बहुत उदार रही है। यही कारण था कि वे किसी समय ज्ञान-विज्ञान, विद्या, बुद्धि, कौशल, राजनीति, रणनीति समाज और गृहस्थ के मामलों में महत्वपूर्ण योगदान देती थीं। पिछले दिनों राजनैतिक पराधीनता अशिक्षा और निर्धनता के कारण भारतीय समाज में जिस कुंठा ने जन्म लिया फलस्वरूप नारी के प्रति पुरुष के दृष्टिकोण में भारी अंतर आया। अनेक लोगों ने नारी की वर्तमान दुर्दशा को उसके नैसर्गिक दोषों की संज्ञा दी। वे भूलते हैं कि पुरुष के समान स्त्री भी कोई जैविक गुण लेकर जन्म नहीं लेती, अपितु समाज उसे जैसी परिस्थितियाँ प्रदान करता है, वह उसी के अनुरूप ढलती और विकसित होती है।

यही कारण है कि संसार के हर देश में, हर देश के असंख्य समुदायों में स्त्रियों की परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न हैं, जो इस बात का प्रतीक है कि नारी परंपरागत मूल्यों और परंपराओं के विधि-निषेध से प्रतिबंधित नहीं, यदि उस पर कोई बंधन है तो वह है पुरुष का अपना स्वार्थी दृष्टिकोण। यदि लोग उसे जोड़ने और नारी को सच्चे अर्थों में विकसित होने दें तो वह प्रगति का प्रधान स्तंभ सिद्ध हो सकती है।

अमेरिका की सुप्रसिद्ध मानव विज्ञानवेत्ता मारग्रेट रीड ने महिलाओं के जीवन का विशद अध्ययन किया है। चौबुली नामक कबीले की स्त्रियों का वर्णन करते हुए वे लिखती हैं, वहाँ की स्त्रियाँ शासक के रूप में काम करती हैं। अपनी सारी व्यवस्था वह आप ही करती हैं, साथ ही प्रबंधक के भी कर्तव्य निवाहती हैं। पुरुष की जिम्मेदारियाँ और भावनात्मक निर्भरता ठीक उसी प्रकार की होती है, जिस प्रकार हमारे समाज में स्त्रियों की। इसी प्रकार की व्यवस्था में चौबुली कबीलों का जीवन बहुत ही सुखी समुन्नत पाया जाता है जिन जनजातियों ने अभी और संस्कारजन्य वरिष्ठता प्राप्त नहीं की है वहाँ की स्त्रियों को यदि अधिक प्रबंध के अधिकार दिए जाएँ तो निरर्थक

अनियमितताओं का, बुराइयों का शीघ्रता से अंत हो सकता है। ऐसे मामलों में कम से कम स्त्रियों से विचार-विमर्श को तो उन्होंने अनिवार्य बताया है, सो सर्वथा उचित भी है। अर्जेंटीना, चिली, क्यूबा, उरुग्वे तथा लैटिन अमरीकी देशों में स्त्रियों को रोजगार राजनीति, उत्पादन आदि किसी भी क्षेत्र में काम करने और आजीविका-पद प्रतिष्ठा प्राप्त करने की छूट है तो भी वहाँ २२ से २५ प्रतिशत ही महिलाएँ इस ओर आकर्षित होती हैं। उनमें से अधिकांश वैयक्तिक कारणों से ऐसा करती हैं। अधिकांश अपनी प्रकृति-प्रदत्त कोमलता, संवदेनशीलता का लाभ परिवारों की सुख, संतुष्टि और सुव्यवस्था को देती हैं, इसमें दोनों पक्ष आत्म-संतोष अनुभव करते हैं। आर्थिक क्षेत्रों में अलग-अलग पड़ी नारी अपने में हर घड़ी मानसिक अभाव अनुभव करती रहती है, अतएव उसे अपनी यह स्वाधीनता प्रिय नहीं लगी, वहाँ के विचारक भी अब इस व्यवस्था में किसी आमूल-चूल परिवर्तन की बात सोचने लगे हैं और उसे एक निश्चित सीमा तक ही रखने के पक्ष में हैं। वहाँ भी यह तथ्य स्वीकार किया जा रहा है कि समाज का भावनात्मक संतुलन स्थूल व्यवस्थाओं से कम महत्त्व नहीं रखता तथा उसमें नारी का योगदान अनिवार्य है। नारी स्थूल व्यवस्थाएँ पुरुष की ही तरह कर सकती है, किंतु उसकी दिव्य क्षमताओं की उपयोगिता व्यक्ति, परिवार तथा समाज के भावनात्मक नेतृत्व में अधिक हैं।

वर्मा के लड़के-लड़कियाँ परस्पर मिल-जुलकर रहते हैं। वे साथ-साथ पढ़ते, पूजन-प्रार्थना भी करते हैं, किंतु वे उथले प्रेम की अपेक्षा गंभीर प्रेम को ही महत्त्व देते हैं, जिसका अर्थ दांपत्य संबंध ही होता है। माता-पिता ऐसे संबंध को धर्म की आज्ञा मानकर, स्वीकार कर लेते हैं। वैसे संबंध माता-पिता ही करते हैं, पर उनमें भी लड़की की रुचि प्रधान होती है। वह भागकर भी विवाह कर सकती, है पर वहाँ के माता-पिता ऐसी स्थिति नहीं आने देते वहाँ कुल, गोत्र नाम की कोई वस्तु नहीं। वर्मा भी भारत के समान ही धार्मिक विचारों का देश है। यदि वहाँ की कन्याओं को विवाह जैसे मामलों में निष्पक्ष चिंतन की छूट है तो यहीं उसे धार्मिक दृष्टि से प्रतिबंधित क्यों माना जाना चाहिए ?

बड़ी संस्था में पुरुष वर्ग की यह मान्यता है कि नारी को समान अधिकार, बराबरी का सम्मान देने तथा उसके साथ कार्यों में बराबरी से सहयोग करने से पुरुषत्व का अपमान है। ऐसा सोचना न तो तर्कसंगत है और न तथ्य सम्मत। यह तो हमारे पूर्वाम्यास और वर्तमान स्थिति बनाए रखने के अपने दुराग्रहपूर्ण चिंतन की विकृति ही है। नारी के सहयोगी बनने में न तो पुरुष को अपमान है और न ऐसा किया जाना अव्यवहारिक ही कहा जा सकता है।

वर्मा के पुरुषों ने इस दिशा में अपनी ओर से पूरी उदारता बरती है। वे घर के काम-काज में पूरी तरह हाथ बंटाते हैं। खाना पकाना, बर्तन धोना बच्चों को खिलाना, लोरी गा-गाकर, उन्हें सुलाना, वे ठीक उसी तरह करते हैं, जिस तरह स्त्रियाँ, पर इसमें उन्हें अपने आपको अपौरुष संपन्न प्रतीत होने का कोई कारण नहीं दिखता, उन्हें किसी प्रकार की लज्जा और हिचक नहीं होती। उससे उनका गृहस्थ सुदृढ़ और सुविकसित होता है, गृह-स्वामिनी गृह प्रबंधक स्त्री होती है, तथापि पुरुष अपने आपको कतई कमजोर अनुभव नहीं करता।

वर्मा की लड़कियाँ छोटी-छोटी दुकानें भी चलाती हैं, फैक्टरियों में भी काम करती हैं, अध्यापक, इंजीनियर, वकील, जज तथा सेना तक में काम करती हैं। "सैन्य छतरी" के रूप में वे विश्व विख्यात हैं। इतने पर भी पुरुष व नारी के बीच वहाँ कोई स्पर्धा नहीं। एक ही जीवन के दो पूरक पहलुओं के रूप में काम करते हैं, इसी से वर्मा का समाज सुखी और संतुष्ट है।

अफ्रीकी देशों के पिछड़ेपन का प्रधान कारण वहाँ नारी का अविकसित होना है। विवाह और दांपत्य संबंधी कोई कुशल नियम प्रतिपादन न होने के कारण वहाँ की स्त्रियों को कभी-कभी आजीवन बच्चों के एकांकी पालन का बोझ ढोना पड़ता है, क्योंकि पति के लिए गृहस्थ संबंध स्थापित करने के बावजूद पारिवारिक संबंधों के कठोरतापूर्वक निर्वाह का कोई नियम नहीं है। विवाह हो जाने पर भी नारी को अधिकांश प्रजनन का ही जीवन जीना पड़ता है, जिससे वह स्वस्थ समाज के निर्माण में किसी प्रकार का योगदान नहीं दे पाती। हमारे समाज में यह नहीं है तो भी दहेज प्रथा ने उनकी स्थिति लगभग यही बना रखी है। इसी से हम भी अपेक्षित रूप से आगे नहीं बढ़ पाते।

विवाहों में यौन आकर्षण की प्रवृत्ति को गौण माना गया। उदाहरण के लिए १६६८ से १६७० तक चिली में किए गए सर्वेक्षण से पता चला कि वहाँ की स्त्रियों में कुल ५ प्रतिशत ही इन विचारों से प्रेरित थी, जबकि पुरुष १४ प्रतिशत। अधिकांश प्रकरणों में सामाजिक मर्यादाएँ, आदर्श कुटुंब स्नेह-सहयोग के आदान-प्रदान तथा परिवार व्यवस्था ही वह तथ्य थे कि जिसके कारण विवाह कार्य संपन्न होते पाए गए। इन उदाहरणों के आधार पर यह तथ्य समझा और स्वीकार किया जाना चाहिए। यौनाकर्षण विवाहों का आधार नहीं है। यदि वह रहा तो मनुष्य भी पशुओं की तरह स्वच्छंद यौन संबंधों तक सीमित रह जाता, परिवार संस्था के निर्माण के चक्कर में पड़ता ही नहीं। वस्तुतः पारस्परिक सहयोग, सामाजिक इकाइयों का निर्माण तथा आत्म विस्तार ही, भावनात्मक तुष्टि ही परिवार संस्था के निर्माण—विवाह-बंधनों के मुख्य आधार है।

नारी की सहज पवित्रता तथा भावनात्मक क्षमता का उपयोग परिवार तथा समाज की अर्थव्यवस्था को सुनियंत्रित तथा सुनियोजित बनाने में भी किया जा सकता है। नारी को अर्थव्यवस्था में बराबरी का सहयोगी बनाकर अथवा उसके ही हाथों में प्रधान रूप से अर्थ नियंत्रण देकर यह लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

अंडमान द्वीप में, आदिम जातियों में स्त्रियों को सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में समानता के अधिकार प्राप्त हैं। नीलगिरि की टोडा जाति में भी ऐसी ही व्यवस्था है। फलस्वरूप यह समुदाय हर दृष्टि से सुखी, संपन्न और अच्छी स्थिति में है। खासियों की व्यवस्था इससे भी बढ़कर है। वहाँ संपत्ति का स्वामित्व पिता से पुत्र की नहीं, माता से पुत्री को हस्तांतरित होता है। पुरुष अर्जित भाग विवाह से पूर्व माता और विवाहोपरांत पत्नी को मिलता है। इस तरह अर्थ-व्यवस्था स्त्रियों द्वारा संचालित होने के कारण पुरुष अनेक सामाजिक बुराइयों से बचा रहता है, क्योंकि उनमें किसी प्रकार न तो नशेबाजी की आदत होती है न निरर्थक प्रदर्शन और अपव्यय की।

महिलाओं को समाज और राष्ट्र को संरचना में सक्रिय भूमिका प्रदान करने के प्रयास अनेक राष्ट्रों ने किए हैं, किंतु यहाँ ध्यान यह भी रखना आवश्यक है कि परिवार की संरचना भी राष्ट्र-निर्माण तथा समाज निर्माण का ही अंग है। अर्थ-व्यवस्था राजनीति, संगठन, कृषि

आदि प्रत्यक्ष रचनात्मक कार्य करने में महिलाओं पर कोई प्रतिबंध तो नहीं होना चाहिए, किंतु परिवार संस्था में श्रेष्ठ और संवेदनशील व्यक्तियों का निर्माण करना भी राष्ट्र निर्माण का एक बड़ा महत्त्वपूर्ण अंग है, यह भुलाया नहीं जाना चाहिए।

रूस में लेनिन की राय थी कि स्त्रियों को गृहस्थी के कार्य और बच्चों के पालन-पोषण से मुक्त कर देना चाहिए, जिससे वे देश की सेवा में समुचित स्थान बना सकें। इस विचार ने काम तो बहुत किया। वहाँ की स्त्री घुटन से ऊपर उठ आई। बच्चों के पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा का भार राष्ट्र ने ले लिया। प्रजनन की व्यवस्था प्रसूतिका गृहों में होने लगी। इन संस्थाओं को विशेषज्ञों का योगदान और सब प्रकार की सुविधाएँ दी गईं। पर पीछे यह पाया गया कि इस पीढ़ी में वह गुण नहीं जो घर में जन्मे और परिवार की छत्रछाया में विकसित बच्चों में पाए जाते हैं। यह बात स्वयं लेनिन की पत्नी क्रप्सकाया तक ने अनुभव की और आज तक यह विचार जोर पकड़े हुए है कि सामाजिक संवेदना के लिए संयुक्त कुटुंब प्रणाली का प्रयोग किसी हद तक बहुत उपयोगी और आवश्यक है। यह देन भारतवर्ष की है, उसे अपनी इस परंपरा पर फिर से विचार करना होगा, तभी रूस जैसी बुराईयाँ मिटाई जा सकेंगी।

ब्रिटेन में स्त्रियाँ अक्सर नौकरियाँ तलाशती हैं, इससे वहाँ की भी पारिवारिक मधुरता नष्ट हुई है। इस बात को वहाँ के विचारक भी अनुभव करते हैं और अब यह कहने लगे हैं—“घर का काम राष्ट्र का काम नहीं है, यह समझना भूल है।”

इसका यह अर्थ नहीं कि नारी को घरेलू कामों तक ही सीमित रखा जाए। यहाँ तो केवल इस तथ्य पर प्रकाश डाला जा रहा है कि नारी की भावनात्मक क्षमता के उपयोग की बात, उनकी व्यक्तित्व निर्माण की अद्भुत क्षमता—स्थूल-कार्यों की तुलना में भुला न दी जानी चाहिए। वैसे नारी में क्षमताएँ हर प्रकार की हैं। समय पड़ने पर हर क्षेत्र में वह पुरुष की बराबरी में सहयोग के लिए खड़ी हो सके, ऐसी क्षमता और योग्यता उसमें विकसित होने देना आवश्यक है।

समय पड़ने पर स्त्रियों को वियतनाम की तरह की भूमिका के लिए भी तैयार रहना चाहिए और इजरायल की स्त्रियों के समान भी। युद्ध के दिनों में वहाँ के उद्योग-धंधों, कृषि, स्कूल आदि कार्य

महिलाओं ने ही चलाए और सेना को भी योगदान देती रहीं। उत्तरी वियतनाम की एक सेनाधिकारी तक महिला थीं। अपनी सामयिक जिम्मेदारियाँ निबाहते हुए भी उन्हें अपने आधार तत्त्व को बनाए रखना आवश्यक है।

परंपराएँ युग की सामाजिक देन होती हैं, उनमें परिवर्तन किया जाना न तो धर्म के विपरीत होता है और न सामाजिक आचार-विचार के विरुद्ध। टिंबकटू में पुरुष स्त्रियों से घूँघट करते हैं, स्त्रियाँ किसी प्रकार का घूँघट नहीं करतीं। कहते हैं कि टिंबकटू के लोग कभी योद्धा जाति के होते थे। वीरता प्रदर्शन के लिए वे अक्सर आपस में ही मारकाट और नोंच-खसौट किया करते थे, जिससे उनके मुँह में घाव हो जाते थे। कुरूप हो जाने से स्त्रियाँ उनसे विवाह नहीं करती थी। इस कारण अपनी कुरूपता छिपाने के लिए वहाँ पुरुषों में पर्दा प्रथा प्रचलित हुई, जो अब परंपरा बन गई। यद्यपि आज उसका कोई औचित्य नहीं। इसी प्रकार किसी जमाने में ऐसी ही राजनीतिक परवशता के कारण हमारे समाज में महिलाओं में पर्दा प्रथा हुई थी, पर आज उसका कोई औचित्य नहीं। उनके शील को आज कहीं से संकट नहीं। अतएव पर्दा को छोड़ने में न भय और न हिचक होनी चाहिए, न तोड़ने में सामाजिक प्रतिष्ठा का भय।

इन दिनों विश्वभर में महिलाओं को समानता का दर्जा देने तथा उसे अपने विकास में समुचित अवसर उपलब्ध कराने की बातें बड़े जोरों से की जा रही हैं। इस दिशा में काफी कुछ हो रहा है और कई देशों की महिलाओं में अपने आपको पहचानने की क्षमता भी जागृत हुई है तथा वे अपने अधिकारों के प्रति सजग भी होने लगी हैं, परंतु भारतीय नारी की अभी भी पाँच सौ वर्ष पूर्व की स्थिति में पिछड़ा कहा जाता है और जिसकी स्थिति पर यह आरोप लगाया जाता है कि उसका कोई व्यक्तित्व नहीं है, वह बच्चा पैदा करने की मशीन है, वह सिर्फ माँ बन सकती है, पुरुष की मित्र नहीं। इसलिए दुनियाँ की नारी को समानता की स्थिति में आने के लिए यदि सौ वर्ष लगे तो उसे हजार। एक पश्चिमी महिला पत्रकार मिस-इवबोर्न ने हाल ही में एक अंग्रेजी साप्ताहिक में भारतीय नारी के लिए यही कहा है।

पश्चिमी दृष्टिकोण से देखने पर स्थिति कैसी लगती है, यह उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना कि हम अपनी स्थिति को अपने ही आइने में देखें। भारतीय परिप्रेक्ष्य में ही यदि स्थिति को सही दृष्टिकोण से परखने का प्रयत्न किया जाता तो तस्वीर शायद कुछ और ही बनती। भारतीय नारी की स्थिति कोई अच्छी है, यह तो नहीं कहा जा सकता, पर उसकी समस्याओं, परिस्थितियों पिछड़ेपन, अज्ञान और अंधविश्वासों की तुलना अन्य देश की स्त्रियों से नहीं की जा सकती, क्योंकि हमारी संस्कृति विविधताएँ लिए हुए हैं और उसमें सभी प्रकार की विभिन्न विचारधारा, मान्यताएँ आदर्श और परंपराएँ हैं और इन विविधताओं को लेकर ही अनेक लोग उसकी स्थिति पर आक्षेप करते हैं।

हमारे देश में ऐसा वर्ग भी है, जो लड़कियों को खूब पढ़ने-लिखने और स्वतंत्र व्यवसाय करने की छूट देता है, तो ऐसा वर्ग भी है, जहाँ लड़कियों को बोझ माना जाता है। ऐसे लोग भी मिल जाएँगे, जो लड़कियों को अपना जीवन साथी चुनने का अधिकार देते हैं और ऐसे लोग भी हैं, जो लड़कियों की इस मामले में राय जानना भी अपना अपमान महसूस करेंगे। यहाँ नारी को लेकर भिन्न-भिन्न मानदंड स्थापित किए गए हैं, लेकिन पश्चिमी देशों की तरह उसे केवल टाइपिस्ट, क्लर्क या सेक्रेटरी बनाकर ही प्रगतिशील नहीं मान लिया जाता। पश्चिम के कई देशों में जहाँ आज भी स्त्रियाँ मताधिकारी नहीं है, वहीं हमारे यहाँ स्त्रियों को अपने निर्माण की पूरी-पूरी छूट है। कितने ही जिम्मेदार पदों पर स्त्रियाँ काम कर रही हैं और उन्हें पुरुषों के समान वेतन मिल रहा है, उनको समान अधिकार प्राप्त हैं और वे विशेष परिस्थितियों में विशिष्ट अधिकारों का भी लाभ उठाती है।

सभी स्त्रियाँ कानून प्रदत्त अधिकारों का लाभ नहीं उठा पातीं, यह बात और है और इसका प्रमुख कारण हमारे देश में शिक्षा-प्रसार का अभाव है, जो पुरुषों के लिए भी समस्या है। हमारे देश में अभी साक्षरता का औसत संतोषजनक भी नहीं है। जिन्हें खुली छूट मिली हुई है, वे पुरुष तक शिक्षा और साक्षरता का महत्व नहीं समझते। फिर स्त्रियों के साथ तो विशिष्ट परिस्थितियाँ जुड़ी हुई हैं, जो भले ही बाधक न हों, पर उन्हें ऊँचा उठने के लिए सहायक भी नहीं हैं।

भारत में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति चाहे जो रही है, पर उन्हें माना सदैव शक्ति-स्वरूप ही जाता है। पुरुष कदम-कदम पर उससे सहयोग की अपेक्षा करता है। उसे घर परिवार की चहार दीवारी तक ही सीमित रहने का जो अभिशाप मिला हुआ है, वह आज की नहीं—मध्ययुग की देन है, जबकि उसका नारीत्व ही खतरे में पड़ा हुआ था। लेकिन पिछले सौ वर्षों में भारतीय नारी को ऊँचा उठाने के लिए भारत में जो प्रयास चले हैं, दुनियाँ का कोई भी देश उससे समानता नहीं रखता। राजा राममोहन राय और स्वामी दयानंद से लेकर महर्षि कर्षे तक नारी-उत्थान के प्रयासों का एक महत्वपूर्ण इतिहास है। स्थिति को इतनी जल्दी बदला नहीं जा सका, उसका कारण प्रयासों की शिथिलता नहीं, शताब्दियों की शृंखलाएँ हैं। दो हजार साल की विडंबनाएँ इतनी जल्दी तो नहीं उलटी जा सकती। उन्हें पलटने में कुछ समय लगेगा ही।

हमारे देश में नारी-उत्थान के प्रयास जिस रूप में उभरकर आए हैं और पश्चिमी देशों में उस तरह के प्रयासों का जो स्वरूप है, उनमें आकाश-पाताल का अंतर है। नारी उत्थान की पश्चिमी विचारधारा का इतना ही अर्थ है कि वह स्वतंत्र और स्वच्छंद जीवन जी सके। न परिवार का बंधन रहे और न उससे सामाजिक मर्यादाओं को मानने के लिए कहा जाए। यही कारण है कि पश्चिम में परिवार-संस्था तेजी से टूट रही है। वहाँ जितने विवाह होते हैं, उसमें आधे से ज्यादा तो साल भर भी नहीं चल पाते। कई मामलों में पति-पत्नी का शादी के एक माह बाद ही विवाह संबंध टूट जाता है और तलाक के कारण भी बड़े अजीबो गरीब होते हैं। किसी को शिकायत है कि उसका पति सोते समय खरटे लेता है या बात करते समय छींक देता है। कोई स्त्री इस कारण तलाक की माँग करती है कि उसका पति उसके कुत्ते को प्यार नहीं करता, तो कोई इस कारण कि वह जल्दी सो जाता है।

नारी-उत्थान का अर्थ यह स्वच्छंद उच्छृंखलता है तो बेशक भारतीय नारी स्वप्न में ऐसी प्रगति की आकांक्षी नहीं हैं। यहाँ बचपन से ही सीता और सावित्री का आदर्श सामने रखा जाता है, उसका अतीत लक्ष्मीबाई की शौर्य-गाथा और शंकराचार्य को शास्त्रार्थ में परास्त करने वाली भारती मिश्र के यशोगान से मंडित है। उसके

लिए पत्नी से भी अधिक मातृत्व का आदर्श वरेण्य है। वही उसका ध्येय है और प्राप्तव्य भी। हमारे यहाँ नारी को भले ही पर्दे में रहने, बाल-विवाह करने की कुरीति रही हो, पर उसे माँ के रूप में सदैव देखा जाता रहा है। कोई वयोवृद्ध सज्जन अपने से कम आयु की लड़की को माँ कहकर सम्मान देता है और अनजान (अपरिचित) स्त्रियाँ नए लोगों से 'माँजी' का संबोधन सुनकर स्वयं को सम्मानित किया गया अनुभव करती हैं, परंतु पश्चिम में साठ साल की वृद्धा को यदि माँ कह दिया जाए तो सुनकर इस तरह भडक उठेगी, जिस तरह लाल कपड़े को देखकर साँड़। अब यह स्वयं ही सोचा जा सकता है कि पुरुष की भोग्या बनकर कौन रहना चाहती है—भारतीय या पश्चिमी नारी।

यह भी आरोप लगाया जाता है कि भारतीय माता-पिता लड़कियों को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। एक सीमा तक यह सच भी है, परंतु जिन स्वयं में यह आरोप लगाया गया है, वह मात्र तथ्य का अतिरजित रूप ही है। यह सच है कि भारतीय माता-पिता लड़के के जन्म से जितने खुश होते हैं, उतने ही लड़की के जन्म की खबर सुनकर उदास भी हो जाते हैं। इसका कारण, समाज में प्रचलित दहेज-प्रथा, विवाह-समस्या का विस्तृत ढाँचा है ? परंतु इस कारण कोई अभिभावक अपने दायित्व से नहीं भागता। वह लड़की को गृह-कार्यों में दक्ष बनाने के साथ उसके पीले हाथ करने की पूरी-पूरी चिंता रखता है। उपयुक्त वर तलाश करने के लिए मीलों और महीनों तक भटकता है और शादी के बाद भी बेटी की ओर से एकदम मुँह नहीं मोड़ लेता। ससुराल में लड़की के साथ कैसा बर्ताव किया जा रहा है, वह सुखी है या दुःखी आदि बातों की चिंता भी भारतीय माता-पिता को रहती है।

पश्चिम में अधिकांश माता-पिता पंद्रह-सोलह साल की आयु में ही अपने बच्चों की ओर से स्वयं को बरी मान लेते हैं। लड़कियाँ किशोरावस्था में प्रवेश करते ही नई-नई समस्याओं से चिंतित हो जाती हैं। होश सँभालते ही पढ़ने की फिक्र, फिर काम ढूँढ़ने की फिक्र और सबसे अहम् प्रश्न अपना वर स्वयं तलाश करना। इसके लिए उन्हें अपने अनगिन मित्र-लड़कों में से उपयुक्त साथी का चुनाव करना पड़ता है। अपरिषक्व बुद्धि के कारण कई गलतियाँ और

परिणामस्वरूप अनिश्चित अस्थिर, क्षण-क्षण एक-दूसरे के प्रति सशंकित विवाहित जीवन।

भारतीय स्त्रियों को एक संकीर्ण दायरे में रहने वाली 'भयभीत अबला भी कहा जाता है। पश्चिमी देशों में 'मैत्री शब्द को इन अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है कि कौन लड़की कितने बायफ्रेंड रखती है या किस लड़के की कितनी गर्लफ्रेंड हैं ? माता-पिता का अपनी संतानों पर तो कोई ध्यान रहता नहीं और जहाँ ध्यान रखने की बात भी आती है, वहीं लड़के-लड़कियाँ निजी स्वतंत्रता में अनधिकारी हस्तक्षेप समझने लगते हैं। स्वच्छंद और उन्मुक्त मैत्री गृहित संबंधों के रूप में परिणत होती है और उसका परिणाम चरित्र पतन के रूप में सामने आता है। इसी कारण पश्चिम में कुँवारी माताओं की संख्या चिंताजनक रूप से बढ़ती जा रही है।

अपने देश में इस स्तर की मित्रता को निंदनीय दृष्टि से देखा जा सकता है। माता-पिता अपने बच्चों के चाल-चलन और आचरण पर बारीक दृष्टि रखते हैं, तो संतान भी उनके संरक्षण को आदर की दृष्टि से देखती है और व्यवहार में जहाँ तक निकटता का प्रश्न है, वह बहिन या माँ के रूप तक ही सीमित रखा जाता है। लुक-छिपकर किसी से मित्रता सामान्य दृष्टि से अपमान और भर्त्सना का शिकार होती है। परिवार-संस्था के स्वास्थ्य और पवित्र आधार के लिए उसे अनुचित न कहना परिवार की जड़ों पर चोट करने जैसा ही होगा।

एक और आक्षेप भारतीय स्त्रियों पर यह, लगाया जाता है कि वह पुरुष की इतनी आश्रित रहती है कि बुरी से बुरी परिस्थितियों और दोषों के बावजूद भी वह उसका आश्रय नहीं छोड़ सकती। आदमी और औरत के घनीभूत संबंधों को निर्भरता या विवशता की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। इसके लिए भारतीय गृहस्थ जीवन के आरंभ से लेकर अंत तक की प्रक्रिया का अध्ययन करना होगा। हमारे यहाँ शारीरिक-आकर्षण और यौन-जीवन, विवाहित जीवन का आधार कभी भी नहीं रहा है। जबकि पश्चिमी परिवार केवल इसी आकर्षण में बँधे बसते हैं और यह आकर्षण समाप्त होते ही टूट जाते हैं। जिसे प्रेम कहा जाता है, वह शारीरिक आकर्षण और विषय-वासना के अतिरिक्त कुछ नहीं है। पश्चिम के युवक-युवतियों

विवाह-बंधन में बंधने से पूर्व काफी समय तक साथ रहने और प्रयोग करने के आदी हैं, जिसे डेटिंग कहा जाता है। चंचल-कामुकता कभी तृप्त नहीं होती और उसे प्रेम कहना भी प्रेम जैसे दिव्य तत्त्व का अपमान करना होगा। पहले देर तक परखते रहने के बाद भी कुछ देर तक बने रहने के उपरांत दांपत्य सूत्र वहाँ टूट जाते हैं।

इसके विपरीत भारतीय परिवार का ढाँचा इस प्रकार का है कि विषय-वासना को इसमें बहुत गौण स्थान दिया गया है और स्वच्छ, स्वस्थ सघन स्त्री-पुरुष के सहयोग पर ही जोर दिया गया है। यही कारण है कि हमारे यहाँ विवाह और उसके बाद स्थायी प्रेम के आधार पर परिवार चलते हैं तथा पश्चिम में डेटिंग, तथाकथित प्रेम और फिर विवाह तथा उसके बाद विवाह का चक्र चलता रहता है।

गरिमा, पवित्रता, स्थिरता, भ्रातृत्व, संतुष्ट विवाहित जीवन और सहिष्णुता भारतीय नारी की अक्षुण्ण, विशेषताएँ हैं और छिछलापन, उच्छृंखलता, चंचलता, यौन-जीवन प्रधान, अतृप्त दांपत्य जीवन पाश्चात्य नारी की विडंबना है, जिसे वे प्रगतिशील, स्मार्टनेस और पूर्ण स्वतंत्रता की उपलब्धि मानते हैं। भारतीय नारियों को उन्नत और प्रगतिशील नहीं कहा जा सकता, परंतु प्रगति के जितने उच्च शिखर छूने की उनमें संभावना है, वह अन्यत्र कहीं भी दुर्लभ है।

यह ठीक है कि अभी भारतीय नारियों को दुर्दशाग्रस्त स्थिति से उबारने के लिए काफी कुछ करना है, पर उसकी दुःस्थिति को देखकर निराश होने की आवश्यकता नहीं है। सदियों के परिश्रम से उसका जो रूप निखरकर सामने आया है तथा उसने विरासत में जो गुण प्राप्त किए हैं, वे अद्वितीय हैं। यह बात ठीक है कि संतोषजनक स्थिति में भी नहीं हैं, कीचड़ में गिरी हुई हैं, परंतु उसका व्यक्तित्व हीरे की भाँति है, जो कीचड़ में पड़कर भी मलीन नहीं होता। आवश्यकता उसे कीचड़ में से उठाने और साफ भर करने की है। फिर तो उसके प्रकाश से जो आभा होगी, जो चमक मिलेगी, वह सारी दुनियाँ को चकाचौंध कर देगी। इसलिए अपने समाज और राष्ट्र की उन्नति के आकांक्षी प्रत्येक व्यक्ति को नारी-उत्थान का कार्य सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समझकर, उनमें योगदान ही देना चाहिए।

मुद्रक: युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा